घनानंद

काव्य और आलोचना

डॉ॰ किशोरी लाल

घनानंद

काव्य और आलोचना



डॉ० किशोरीलाल
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

साहित्य भवन [प्रा॰] लिमिटेड
के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

घनानंद

काव्य और आलोचना



डॉ० किशोरीलाल
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड
के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

घनानंद

काव्य और आलोचना



डॉ० किशोरीलाल
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

साहित्य भवन [प्रा॰] लिमिटेड
के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३

मूल्य : १५·००
द्वितीय संशोधित संस्करण : १९८७ © लेखक विद्यार्थी संस्करण : १०·००

साहित्य भवन प्रा० लि०, ९३, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित
एवं नीलराज प्रेस, ३२८/२९८ ए, शाहगंज, इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित

दो शब्द

मध्यकाल के शृंगारिक कवियों में सबसे अधिक प्रतिष्ठा के भाजन केशव और बिहारी हुए। रसिक और विद्वत् वर्ग इन्हीं के काव्यों को पढ़ता-पढ़ाता रहा। इनके आगे न देव का कोई नाम लेवा था और न घनानन्द का। पर मेरी दृष्टि में ये दोनों ही कवि प्रेम के सच्चे गायक और रोमांटिक स्पिरिट (Romantic spirit) के प्रकृत अनुगत थे। हाँ, यह अवश्य है कि घनानन्द की तुलना में देव परम्परा से अधिक प्रभावित थे, पर सर्वत्र नहीं। केशव और बिहारी पर बहुत सी टीकाएँ भी लिखी गईं, पर देव और घनानन्द इस दिशा में बहुत पीछे रहे।

देव और घनानन्द की सच्ची परख सबसे प्रथम रसिक हृदय कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने की और उन्होंने अपने जीवन काल में देवकृत कवित्तों एवं सवैयों का एक संग्रह 'सुन्दरी सिन्दूर' नाम से प्रकाशित करवाया और इसी समय उन्होंने घनानन्द के ११८ कवित्त सवैयों का एक अच्छा सा संकलन 'सुजानशतक' नाम से प्रस्तुत किया। यों घनानन्द और देव के छन्द सरदार कृत 'शृंगार संग्रह' और नवीनकृत 'सुधासर' में भी स्थान पा चुके थे, किन्तु रसिक समुदाय में देव और घनानन्द के अनुशीलन-परिशीलन के द्वार उद्घाटित करने में अधिक सहायक भारतेन्दु के उक्त संग्रह ही हुए।

यद्यपि कठिन काव्य के संदर्भ में केशव का नाम खूब लिया जाता है, लेकिन मेरी धारणा है कि देव और घनानन्द काठिन्य की दृष्टि से केशव से किसी भी रूप में कम नहीं हैं। देव के काव्य पर दृष्टि न डालने का बहुत कुछ कारण उनके काव्य की अर्थगत कठिनाई भी कहा जाता है। कदाचित् इन कठिनाइयों के कारण अधिकांश विश्वविद्यालयों में देव पढ़ाए भी नहीं जाते और जिन विश्वविद्यालयों में देव को पाठ्यक्रम में रख भी दिया गया है, तो वहाँ स्थिति

मूल्य : १५·००
द्वितीय संशोधित संस्करण : १९८७ विद्यार्थी संस्करण : १०·००

साहित्य भवन प्रा० लि०, ९३, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित
एवं नीलराज प्रेस, ३३९/३९८ ए, शाहगंज, इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित

दो शब्द

मध्यकाल के शृंगारिक कवियों में सबसे अधिक प्रतिष्ठा के भाजन केशव और बिहारी हुए। रसिक और विद्वत् वर्ग इन्हीं के काव्यों को पढ़ता-पढ़ाता रहा। इनके आगे न देव का कोई नाम लेवा था और न घनानन्द का। पर मेरी दृष्टि में ये दोनों ही कवि प्रेम के सच्चे गायक और रोमांटिक स्पिरिट (Romantic spirit) के प्रकृत अनुगत थे। हाँ, यह अवश्य है कि घनानन्द की तुलना में देव परम्परा से अधिक प्रभावित थे, पर सर्वत्र नहीं। केशव और बिहारी पर बहुत सी टीकाएँ भी लिखी गईं, पर देव और घनानन्द इस दिशा में बहुत पीछे रहे।

देव और घनानन्द की सच्ची परख सबसे प्रथम रसिक हृदय कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने की और उन्होंने अपने जीवन काल में देवकृत कवित्तों एवं सवैयों का एक संग्रह 'सुन्दरी सिन्दूर' नाम से प्रकाशित करवाया और इसी समय उन्होंने घनानन्द के ११८ कवित्त सवैयों का एक अच्छा सा संकलन 'सुजानशतक' नाम से प्रस्तुत किया। यों घनानन्द और देव के छन्द सरदार कृत 'शृंगार संग्रह' और नवीनकृत 'सुधासर' में भी स्थान पा चुके थे, किन्तु रसिक समुदाय में देव और घनानन्द के अनुशीलन-परिशीलन के द्वार उद्घाटित करने में अधिक सहायक भारतेन्दु के उक्त संग्रह ही हुए।

यद्यपि कठिन काव्य के संदर्भ में केशव का नाम खूब लिया जाता है, लेकिन मेरी धारणा है कि देव और घनानन्द काठिन्य की दृष्टि से केशव से किसी भी रूप में कम नहीं हैं। देव के काव्य पर दृष्टि न डालने का बहुत कुछ कारण उनके काव्य की अर्थगत कठिनाई भी कहा जाता है। कदाचित् इन कठिनाइयों के कारण अधिकांश विश्वविद्यालयों में देव पढ़ाए भी नहीं जाते और जिन विश्वविद्यालयों में देव को पाठ्यक्रम में रख भी दिया गया है, तो वहाँ स्थिति

यह है कि इसके लिए बेचारे अध्यापक और अध्येता दोनों ही परेशान दिखाई पड़ते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे काव्यों को जल्दी पढ़ाने के लिए कोई तैयार ही नहीं होता। दूर की बात तो जाने दीजिए, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भी देव के किसी मूल ग्रन्थ को जहाँ तक ज्ञात हुआ है कभी पाठ्यक्रम में नहीं रखा गया। वस्तुतः यह वही विश्वविद्यालय है जहाँ कभी केशव के उद्धारक लाला भगवानदीन और सूर, तुलसी, जायसी और घनानन्द के मर्मी आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्राचीन काव्य के पठन-पाठन को अग्रसर किया था और इन काव्यों को समझने और परखने की एक नई दृष्टि और दिशा दी थी।

'सुजान सागर' नाम से घनानन्द की रचनाओं का एक विशाल संग्रह ब्रजभाषा के मर्मज्ञ बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने बनारस से मुद्रित कराया था, पर उसके पाठ और अर्थ के सम्बन्ध में कई स्थलों पर संदिग्ध चिह्न लगा कर उन्होंने छोड़ दिया था। वही संस्करण रसखान की रचनाओं को जोड़कर बाबू अमीर सिंह ने 'रसखान और घनानन्द' नाम से काशी नागरी प्रचारिणी से छपवाया था। पर घनानन्द अपनी शैली और लाक्षणिक प्रयोग के कारण कुछ ऐसे विशिष्ट कवियों में परिगणित होते हैं, जिन्हें बिना टीका टिप्पणी और विस्तृत भाष्य के पढ़ना-पढ़ाना बहुत ही कठिन है। लेकिन सम्प्रति हिन्दी जगत आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का हृदय से ऋणी है, जिन्होंने अथक श्रम करके एक कुशल मरजीवा की भाँति घनानन्द सागर से महार्घरत्नों को ढूढ़ निकालने का श्लाघ्य प्रयत्न किया। उन्होंने घनानन्द ग्रन्थावली संपादित करके और 'घनानन्द कवित्त' को विस्तृत टिप्पणियों से संकलित करके हिन्दी का विशेषकर घनानन्द के अध्येताओं का महान् उपकार किया है।

प्रस्तुत कृति 'घनानन्द : काव्य और आलोचना' का प्रणयन आचार्य प्रवर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की घनानन्द ग्रन्थावली को आधार बनाकर किया गया है। क्योंकि पाठ और अर्थ की दृष्टि से इतना सुन्दर सम्पादन अन्यत्र देखने को नहीं मिला। इसके साथ ही घनानन्द को समझने की आलोचनात्मक दृष्टि भी इन्हीं की कृतियों से मिली है और छन्दों का संकलन भी इन्हीं की संपादित कृतियों से किया गया है। एतदर्थ मैं आचार्य मिश्र का परम आभारी हूँ।

यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में कविवर घनानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की आलोचना प्रस्तुत की गई है और द्वितीय खण्ड में उनके चुने हुए सौ छन्दों का संकलन किया गया है। छन्दों को समझने के लिए कुछ कठिन शब्दों की टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं।

इस ग्रन्थ के लिखने में हमें ज्ञानवती त्रिवेदी कृत 'घनआनँद' और श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा के 'घनआनँद' नामक ग्रन्थों से अमित सहायता मिली है, इसके लिए हम उक्त दोनों ही सज्जनों के ऋण को हृदय से स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त हम डॉ० मनोहर लाल गौड़ और डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा के भी उपकृत हैं, जिनके शोध-प्रबन्धों से मुझे कई स्थलों पर अत्यधिक सहयोग मिला है। हम उन ग्रन्थ-कर्त्ताओं के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिनकी कृतियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में सहायता मिली है।

अन्त में, हम साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद के प्रबन्धक श्री गिरीश टण्डन को भी धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ के मुद्रण की समुचित व्यवस्था करके इसे प्रकाशित किया।

विजयदशमी
२२, अक्टूबर १९७७
१६०, नैनीबाजार,
इलाहाबाद

—किशोरीलाल

विषयानुक्रमणिका

[आलोचना खण्ड]

[काव्य खण्ड]

●

आलोचना खंड

१—जीवन वृत्त

स्वच्छंद मार्ग के सच्चे पथिक घनानन्द के जीवन सूत्रों को आधार बनाकर उनके सम्बन्ध में जितनी बातें प्रस्तुत की गई हैं उन सब को लेकर विद्वानों में परस्पर बड़ा विवाद और मतभेद वर्षों से बना रहा है। इसका कारण यह है कि घनानन्द ने अपने सम्बन्ध में कहीं ऐसा पुष्ट संकेत नहीं किया जिससे उनके जीवन के सम्बन्ध में विवादैषणा का मैदान तैयार न हो पाता। दूसरे शब्दों में उनकी प्रामाणिक जीवनी का एक मात्र आधार बाह्यसाक्ष्य ही शेष बचता है, अन्तःसाक्ष्य के सूत्र प्रायः नहीं मिलते।

इधर खोज में घनानन्द के विश्रुत विद्वान आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को 'परमहंस वंशावली' नामक ग्रन्थ और मिला है, जिसमें यत्किंचित घनानन्द के सम्बन्ध में नव्य सूचनाएँ मिली हैं। ये सूचनाएँ अन्तःसाक्ष्य से प्राप्त होती हैं, अतः इनकी सत्यता और प्रामाणिकता के बारे में संदेह नहीं किया जा सकता, पर जब तक कोई और ठोस और पक्का अन्तःसाक्ष्य नहीं प्राप्त होता, तब तक घनानन्द के पाठकों की जिज्ञासा का परिहार सच्चे अर्थों में नहीं हो सकता। संभव है, भविष्य के अनुसंधान से उनकी जीवनी के तथ्यातथ्य पर विशेष रूप से विचार किया जा सके और उनके सम्बन्ध में प्राप्त भ्रांतियों का निराकरण अपेक्षाकृत अधिकाधिक हो सके, किन्तु अभी तो उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही उनकी जीवनी का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जा सकता है।

अभी तक घनानन्द की जीवन विषयक जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उसे विषयानुसार निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) (१) साहित्यिक—जिसमें हिन्दी साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास ग्रंथों की गणना की जाती है और जिसमें घनानन्द का विशेष विवरण प्राप्त हैं।

(२) साम्प्रदायिक या धार्मिक—जिसमें किंवदन्ती और प्रशस्ति रूप में घनानन्द जी के सम्बन्ध में कुछ तथ्य मिलते हैं।

(३) फुटकल—जिसमें खोज के विवरण, शोध प्रबन्ध और घनानन्द विषयक प्रकाशित लेखादि की गणना जाती है।

हम उपर्युक्त सामग्री को दृष्टि में रख कर ही घनानन्द जी की जीवनी के सम्बन्ध में यथासंभव विचार करेंगे। सर्व प्रथम हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री का परीक्षण इस दृष्टि से किया जायगा कि उससे कवि घनानन्द के जीवन वृत्त पर कितना प्रकाश पड़ता है और उससे उनके जीवन वृत्त के निर्णय में कहाँ तक सहायता मिलती है।

प्राचीन इतिहास ग्रन्थों में सर्व प्रथम गार्सादतासी कृत 'इस्त्वार दल लितरे-त्यूरएँ हिन्दुस्तानी का' नामोल्लेख होता है और जिसका हिन्दी-साहित्य से सम्बन्धित अंश डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से हिन्दी में अनूदित कर दिया है। इस ग्रन्थ में घनानन्द नाम तो नहीं मिलता, किन्तु 'आनन्द' नाम के किसी कवि का उल्लेख हुआ है। यह आनन्द कवि घनानन्द ही हैं या कोई अन्य, इस सम्बन्ध में उस ग्रन्थ से किसी भी प्रकार का विवरण नहीं मिलता। उसमें तो तासी ने यही कहा है—"वह लोकप्रिय गीतों का रचयिता था और उसके कुछ पद्य डबल्यू प्राइस द्वारा 'हिन्दी ऐंड हिन्दुस्तानी सेलेक्शन' नामक पुस्तक में संगृहीत हुए थे।"[1] इस विवरण के अनुसार कि वे लोकप्रिय गीतों के रचयिता थे, बात अधिक स्पष्ट नहीं होती। हाँ, यदि वे लोकप्रिय गीत मिल जाँय तो अवश्य ही कुछ निश्चय के साथ कहा जा सकता है। इन लोकप्रिय गीतों के सम्बन्ध में डॉ० मनोहर लाल गौड़ का अनुमान है कि लोकप्रिय गीतों की रचना घनानन्द की पदावली हो सकती है, पर यह सब अनुमान मात्र है।[2]

तासी के पश्चात् ठाकुर शिवसिंह सेंगर के शिवसिंह सरोज की चर्चा की जाती है। वस्तुतः वृत्त संग्रह की दृष्टि से यह विशाल ग्रन्थ अतिशय महत्त्व रखता है और इससे परवर्ती इतिहास लेखकों को इतिहास लेखन में पर्याप्त सहा-

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ० ८
२. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा—डॉ० मनोहर लाल गौड़, पृ० १, प्र० सं०

यता मिली है। इस ग्रन्थ में ठाकुर शिवसिंह ने घनानन्द और आनन्दघन नाम से दो कवियों का उल्लेख किया है और दोनों के नाम से अलग-अलग तीन सवैये उद्धृत किए हैं। दो सवैये 'आनन्दघन दिल्ली वाले' के नाम से उद्धृत हैं और जिसके प्रथम सवैया का प्रथम चरण यों है—आपही ते तन हेरि हँसें तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं (शि.सि.स. सप्तम सं. पृ.।११), दूसरे सवैये की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हें फिरि भूलि न मोतन भूलि चितैहैं (शि. सि. स. सप्तम सं. पृ० १२)। घनानन्द के नाम से जो सवैया उद्धृत किया है उसकी प्रथम पंक्ति का आरम्भ यों हुआ है—गाइहौं देवी गनेस महेश दिनेसहिं पूजत ही फल पाइहौं (शि. सि. स. पृ० ८२) ठाकुर शिवसिंह ने इन दोनों के अलावा एक आनन्द कवि की भी चर्चा की है और उनका उपस्थित काल सं० १७११ बताया है तथा उनके दो ग्रन्थों-कोकसार और सामुद्रिक का भी कथन किया है।[1] इधर घनानन्द के सुधी आलोचक आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने उक्त तीनों सवैयों पर अपने ढंग से विचार किया है—और उनका कथन है कि 'जैहै सबै सुधि भूलि' वाला सवैया न तो आनन्दघन का है और न घनानन्द का, बल्कि यह छन्द केशव पुत्र बधू का है।[2] इसके साथ ही 'आपही ते तन हेरि हँसें' छन्द को उन्होंने घनानन्द का ही स्वीकार किया है और यह उन्हें सरदार के प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ श्रृङ्गार संग्रह से प्राप्त हुआ था।

घनानन्द के 'गाइहौं देवी गनेस महेस' वाले छन्द को भी उन्होंने दूसरे की रचना माना है और इसके सम्बन्ध में उनका तर्क है कि यद्यपि इस सवैया में घनानन्द का नाम आया है, फिर भी इसकी भाषा शैली आनन्दघन की भाषा शैली से नहीं मिलती—उनका विश्वास है कि यह किसी रीति कवि का छन्द है और इसमें क्रियाविदग्धा नायिका का संकेत है। इस सवैया के सम्बन्ध में डॉ० मनोहर लाल गौड़ का विचार है कि ऐसी कोई विशेष बात भी इस पद्य में नहीं दीखती जिसके कारण यह घनानन्द का न हो।[3] पर इस सवैया की भाषा ऐसी

---

१. शिवसिंह सरोज—पृ० ३८३, सप्तम सं०, सन् १९२६ ई०

२. घनआनन्द और आनन्दघन—सं० आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाङ्मुख, पृ० ३

३. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा—डॉ० मनोहर लाल गौड़, पृ० २

सरल प्रांजल और चलती है कि शीघ्र घनानन्द कृत इसे नहीं माना जा सकता। वस्तुतः घनानन्द के सवैयों में वक्रता और विरोध का ऐसा वैशिष्ट्यपूर्ण विधान है कि उसके अभाव में उनके छन्दों की पहचान जल्दी नहीं की जा सकती। अतः इस आधार पर यह घनानन्द का छन्द नहीं कहा जा सकता।

डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन ने सरोज एवं महादेव प्रसाद कृत 'साहित्य भूषण' के आधार पर घनानन्द के सम्बन्ध में अधिक विचार किया है। यद्यपि उन्होंने साहित्य भूषण के आधार पर दिल्ली वाले आनन्दघन या घनानन्द को कायस्थ कुल का बताया है और इसके साथ ही उन्हें दिल्ली के मुहम्मद शाह रंगीले का मुंशी भी घोषित किया है, लेकिन सब से विचारणीय बात यह है कि उन्होंने सरोज के आधार पर 'कोकसार' या 'कोकमंजरी' के रचयिता आनन्द और आनन्दघन की अभिन्नता की संभावना व्यक्त की है—

He is possibly the same as another Anandkabi mentioned by Sibsingh as born is 1654 A. D. and the author of a work on sexual intercourse entitled koksar (Rag.). He some times signed himself Ghan Anand.[1]

प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थ रागकल्पद्रुम में भी आनन्द और आनन्दघन को एक समझा गया है। इधर आनन्दघन भी दो माने गये हैं और सर्व प्रथम मिश्र-बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद में' दिल्ली वाले आनन्दघन के अलावा एक अन्य घनानन्द का उल्लेख यों किया है—'आनन्दघन, ग्रंथ आनन्दघन बहुत्तरी स्तवावली रचनाकाल—१७०५, विवरण-यशोविजय के सम सामायिक थे।'[२] पर-क्षितिमोहन सेन ने 'वीणा' (नवम्बर, १९३८) में 'जैनमर्मी' 'आनन्दघन' शीर्षक से एक लेख लिख कर वृन्दावन के आनन्दघन और जैनमर्मी आनन्द की अभेदता को स्वीकार किया है।[3] इन दोनों के एक होने की संभावना श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने भी अपने समीक्षा ग्रंथ 'घनआनन्द' में यों की है—"आचार्य सेन ने

---

1. The Modern Vernacular literature of Hindusthan, Page 92, Published in 1889
२. मिश्र बन्धु विनोद—द्वितीय भाग, पृ० ४२८
३. घनआनन्द ग्रन्थावली—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ५३

अपने लेख में जो कुछ लिखा है और ऊपर जो कुछ विचार किया गया है उन्हें ध्यान में रखते हुए यही कहना पड़ता है कि शिवसिंह सरोज के घनआनन्द और जैनमर्मी आनन्दघन एक ही हैं, किन्तु वृन्दावन के आनन्दघन हमें तो अपने ही घनानन्द जान पड़ते हैं।"[१]

इधर खोज रिपोर्ट के आधार पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि आनन्द नामक कवि आनन्दघन या घनानन्द से भिन्न था और उसे उक्त नामों से जोड़ा नहीं जा सकता। उन्होंने खोज रिपोर्ट का जो अंश उद्धृत किया है वह इस प्रकार है—

कायथ कुल आनन्द कवि बासी कोट हिसार।
कोक कला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संवत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोक मंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

आचार्य मिश्र ने पहले घनानन्द की जिन रचनाओं का संग्रह प्रस्तुत किया था, उसमें घनानन्द और आनन्दघन को अलग-अलग स्वीकार किया था, और कवित्त-सवैया के रचयिता को घनानन्द और पदों के प्रणेता को आनन्दघन बताया था। दोनों की प्रवृत्ति गत विशेषता को दृष्टि में रख कर कवित्त-सवैया वाले को प्रेमी और पद के रचयिता को भक्त मान कर बँटवारा किया था, पर सं० २००८ में जो 'घनानन्द ग्रंथावली' मुद्रित हुई उसमें दोनों को एक स्वीकार किया गया और प्रेमी और भक्त का पुछल्ला हटा लिया गया तथा जैनमार्गी आनन्दघन को उस ग्रंथावली से बिलकुल अलग कर दिया गया। इसका कारण यह है कि जैनमार्गी आनन्दघन का वैष्णवमार्गी आनन्दघन से कुछ सम्बन्ध नहीं है और दोनों के समय में लगभग सौ वर्षों का अन्तर है। जहाँ तक आनन्द कवि के समय का प्रश्न है, आचार्य मिश्र ने उसे विक्रम की सत्रहवीं शती का तृतीय चरण बताया है।[२]

जैन आनन्दघन और वृन्दावनवासी आनन्दघन की अभिन्नता पर भी आचार्य

---

१. घनआनन्द—ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० ११
२. घनआनन्द ग्रन्थावली, भूमिका भाग, पृ० ५२

मिश्र ने पूर्णरूपेण अपना मत व्यक्त किया है और उनके अनुसार जैन आनन्दघन (महात्मा लाभानन्द जी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रम का उत्तरार्द्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समय सुन्दर (सं० १६७२), जिन राज सूरि (सं० १६७८), सकल चंद्र (१६४०) और प्रीति विमल (सं० १६७१) के जिन स्तवनादि ग्रंथों में आये चरणों से मिलती है।[1] वृन्दावनवासी आनन्द-घन को 'छप्पन भोग चंद्रिका' में कृष्णगढ़ के राज कवि जय लाल ने नागरीदास का सम सामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१. आनन्दघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२. आनन्दघन हरिदास आदि सों संत सभा मधि॥
३. आनन्दघन को संग करत तन मन को वार्यों।—

नागरसमुच्चय

इसके अतिरिक्त 'राधा कृष्ण ग्रंथावली' में एक चित्र की चर्चा की गयी है, जिसमें नागरीदास और आनन्दघन एक साथ बैठे हुए दिखाये गये हैं। जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि जैन आनन्दघन के समय में और नागरीदास के सम-सामयिक कवि आनन्दघन के समय में पर्याप्त अन्तर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नागरीदास का कविता काल सं० १७८० से १८१९ तक माना है।[2] अतः स्पष्ट है कि वृन्दावन वासी आनन्दघन का समय अट्ठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इसी प्रकार डॉ० मनोहर लाल गौड़ ने अपने शोध प्रबन्ध में एक नन्द गाँव के रहने वाले आनन्दघन की भी चर्चा की है।[3] पर वे जात्या ब्राह्मण थे और उनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है, और सुजान प्रेमी घनानन्द से वे कम से कम सौ वर्ष पहले ठहरते हैं। यही नहीं, सुजान प्रेमी घनानन्द जाति के कायस्थ थे।

---

१. आनन्दघन ग्रंथावली—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूमिका भाग, पृ० ३५
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८०, सं० १९९९ का संस्करण
३. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा—डॉ० मनोहरलाल गौड़, पृ० ३८

इधर डॉ० केशरी नारायण शुक्ल ने 'सम्पूर्णानन्द अभिनंदन ग्रंथ' में प्रकाशित अपने लेख में नानक के टीकाकार आनन्दघन की चर्चा की है, जो न तो जैनी घनानन्द हैं, न वैष्णव भक्त और न प्रेमी। ये नानकजी के जंपजी के टीकाकार हैं, इनकी टीका गुरुमुखी में है और यह लन्दन संग्रहालय में विद्यमान है। इनका रचनाकाल सम्वत १८५४ माना गया है।

(ख) जन्म स्थान—शिवसिंह सरोज में आनन्दघन को दिल्ली निवासी बताया गया है, पर इसको उन्होंने किस आधार पर अनुमित किया है यह स्पष्ट नहीं है। बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इन्हें बुलन्दशहर निवासी कहा है, लेकिन श्री शम्भु प्रसाद बहुगुना ने कोकसार के रचयिता आनन्द के साथ आनंदघन की अभिन्नता दिखा कर इन्हें तदनुसार कोट हिसार का निवासी घोषित किया है।[1] पर खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि सुजान प्रेमी आनन्दघन या घनानन्द से इनका कुछ भी सम्बन्ध न था और घनानन्द की कृतियों के अनुशीलन से भी पता नहीं चलता कि वे कहाँ के रहने वाले थे। हाँ, अपने वृन्दावनवास का उल्लेख एक भक्त के रूप में उन्होंने अवश्य किया है। वृन्दावन की महिमा और उसके सौन्दर्य का भाव पूर्ण वर्णन उन्होंने अपने प्रसिद्ध छन्द—'गुरनि बतायौ राधामोहनहू गायौ सदा, सुखद सुहायौ वृन्दावन गाढ़े गहिरे।' में भी किया है, पर इससे यह नहीं मालूम होता कि वे वृन्दावन के निवासी थे। इस सम्बन्ध में डॉ० मनोहर लाल गौड़ का मत है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जो देशी शब्दों का व्यवहार किया है उससे वे अवश्य बुलन्दशहर के पूर्वी भाग के निवासी लगते हैं। उन्होंने इस कथन की पुष्टि के लिये वहाँ की कुछ शब्दावली भी प्रस्तुत की है, यथा सोबर (प्रसूतिका गृह), टेहुले, गरैंठी, बरहे, संजोखे, नाजा, झरां, पैछर, गोहन आदि।[2]

(ग) जन्म तिथि—घनानन्द के नाम, स्थान और जाति की भाँति इनकी जन्म-तिथि भी विवादास्पद रही है। ठाकुर अमीर सिंह का कथन है कि सं० १७१५ के समीप उनका जन्म और सं० १७९६ में उनकी गोलोक यात्रा तो निश्चित है। इस हिसाब से उन्होंने अनुमानतः ८१ वर्ष की आयु भोगी

---

१. घनआनन्द—शम्भु प्रसाद बहुगुना, सं० १९९९ का संस्करण, पृ० १२
२. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा—डॉ० मनोहर लाल गौड़, पृ० १३

होगी।[1] वस्तुतः अमीर सिंह ने घनानन्द की जन्म-तिथि का यह ब्यौरा लाला भगवानदीन द्वारा लिखित और 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका में प्रकाशित एक लेख के आधार पर दिया है, जिसमें कहा गया है—आनन्दघन का जन्म सं० १७१५ में प्रतीत होता है। और इनकी परलोक यात्रा सं० १७९६ में जान पड़ती है।[2]

(ख) दरबार सम्बद्ध जीवन—बहुत पहले गोस्वामी राधाचरण जी ने आनन्दघन के बारे में अपने एक छप्पय में लिखा था—

दिल्लीश्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायौ।
पै निज प्यारी कहे सभा को रीझि रिझायौ॥
कुपित होय नृप दिय निकास बृन्दाबन आए।
परम सुजान सुजान छाप पद कबित बनाए॥
नादिर शाही ब्रज रस मिले किय न नेकु उच्चार मन।
हरि भक्ति बेलि सिंचन करी घनआनन्द आनन्दघन॥

इस छप्पय का आशय यह है कि दिल्लीश्वर नृप के निमित्त उन्होंने एक ध्रुपद गाकर नहीं सुनाया और अपनी प्यारी के कहने से रीझ कर सारी सभा को प्रसन्न किया। घनानन्द की इस गुस्ताखी से नाराज होकर राजा ने इन्हें निकाल दिया और निकाले जाने पर ये वृन्दावन चले आये। वहाँ आकर सुजान छाप से पद एवं कवित्तों की रचना की और वहीं नादिरशाह के सिपाहियों द्वारा कत्ल किये जाने पर ब्रजरज में मिल गये। इसी बात को श्री वियोगी हरि ने भी अपने 'ब्रजमाधुरी सार' ग्रंथ में दुहराया है और अपने 'कवि कीर्तन' में भी गोस्वामी राधाचरण द्वारा कथित तथ्यों का संकेत किया।[3]

(i) मीर मुंशी—बाबू राधा कृष्णदास ने भारतेन्दु कृत 'सुजान शतक' की भूमिका के आधार पर घनानन्द के सम्बन्ध में इस बात का स्पष्ट संकेत किया है कि इनका सम्बन्ध दिल्ली दरबार से था।[4] यों गोस्वामी राधाचरण जी ने भी

१. रसखान और घनानन्द—बाबू अमीर सिंह, पृ० ४०, द्वि० सं०
२. वही, पृ० ३७
३. कवि कीर्तन—वियोगी हरि, पृ० ३३, ३४ प्र० सं०
४. राधा कृष्ण ग्रंथावली—सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, पृ० १७२

दिल्ली दरबार तो नहीं, पर दिल्लीश्वर का स्पष्ट उल्लेख किया है। यह दिल्लीश्वर कौन था इसका आभास इससे नहीं मिलता। डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन महोदय ने महादेव प्रसाद के 'साहित्य भूखन' के आधार पर भारतेन्दु की ही बात कही है, उनका कथन है कि घनानन्द जाति के कायस्थ थे और मुहम्मद शाह के मुंशी थे—

According to the Sahitya Bhukhan of Mahadeo Prasad he was a Kayastha by Caste and Mohammad Shah's Munshi.[1]

ग्रियर्सन के इस कथन से तो ये केवल मुंशी ही मालूम होते हैं, पर लाला भगवानदीन ने अपनी लक्ष्मी पत्रिका में घनानन्द के सम्बन्ध में जो लेख लिखा था उसके अनुसार ये दिल्लीश्वर मुहम्मद शाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे।[२] 'मीर मुंशी' के सम्बन्ध में अपनी विशेष टिप्पणी श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने यों दी है—मीर मुंशी का अर्थ है मुंशियों में श्रेष्ठ अथवा सबसे बड़ा मुंशी। और उनका विचार है कि छोटे ओहदे से धीरे-धीरे ये बड़े ओहदे पर पहुँचे थे। मुंशी से बढ़ते-बढ़ते मुंशियों में प्रधान होना ही अधिक सामान्य बात है। अतः यह प्रसिद्ध हो गया कि यह मीर मुंशी हो गये थे।[३]

ज्ञानवती त्रिवेदी ने घनानन्द को 'मीर मुंशी' होने से ज्यादा संभावना उनके प्राइवेट सेक्रेटरी होने-की की है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—'बादशाह का खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो एकदम नवीन हो। अतः घनानन्द भी पहले किसी अन्य पद पर आरूढ़ रहे होंगे और फिर बाद में बादशाह के खास कलम नियुक्त हुये होंगे।[४]

(ii) **सुजान और उनके सम्बन्ध में प्रचलित किंवदंतियाँ**—गोस्वामी राधाचरण ने अपने उस छप्पय में जिसे पिछले पृष्ठों में उद्धृत किया गया है—कहा

---

1. The Modern Vernacular literature of Hindusthan—A. G. Grierson, Page 92
२. रसखान और घनआनन्द, पृ० ३७
३. घनानन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १७
४. वही, पृ० १८

होगी।[1] वस्तुतः अमीर सिंह ने घनानन्द की जन्म-तिथि का यह ब्यौरा लाला भगवानदीन द्वारा लिखित और 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका में प्रकाशित एक लेख के आधार पर दिया है, जिसमें कहा गया है—आनन्दघन का जन्म सं० १७१५ में प्रतीत होता है। और इनकी परलोक यात्रा सं० १७९६ में जान पड़ती है।[2]

(ख) दरबार सम्बद्ध जीवन—बहुत पहले गोस्वामी राधाचरण जी ने आनन्दघन के बारे में अपने एक छप्पय में लिखा था—

दिल्लीश्वर नृप निमित एक धुरपद नहि गायौ।
पै निज प्यारी कहे सभा को रीझि रिझायौ।।
कुपित होय नृप दिय निकास बृन्दावन आए।
परम सुजान सुजान छाप पद कबित बनाए।।
नादिर शाही ब्रज रस मिले किय न नेकु उच्चार मन।
हरि भक्ति बेलि सिंचन करी घनआनन्द आनन्दघन।।

इस छप्पय का आशय यह है कि दिल्लीश्वर नृप के निमित्त उन्होंने एक ध्रुपद गाकर नहीं सुनाया और अपनी प्यारी के कहने से रीझ कर सारी सभा को प्रसन्न किया। घनानन्द की इस गुस्ताखी से नाराज होकर राजा ने इन्हें निकाल दिया और निकाले जाने पर ये वृन्दावन चले आये। वहाँ आकर सुजान छाप से पद एवं कवित्तों की रचना की और वहीं नादिरशाह के सिपाहियों द्वारा कत्ल किये जाने पर ब्रजरज में मिल गये। इसी बात को श्री वियोगी हरि ने भी अपने 'ब्रजमाधुरी सार' ग्रंथ में दुहराया है और अपने 'कवि कीर्तन' में भी गोस्वामी राधाचरण द्वारा कथित तथ्यों का संकेत किया।[3]

(i) मीर मुंशी—बाबू राधा कृष्णदास ने भारतेन्दु कृत 'सुजान शतक' की भूमिका के आधार पर घनानन्द के सम्बन्ध में इस बात का स्पष्ट संकेत किया है कि इनका सम्बन्ध दिल्ली दरबार से था।[4] यों गोस्वामी राधाचरण जी ने भी

१. रसखान और घनानन्द—बाबू अमीर सिंह, पृ० ४०, द्वि० सं०
२. वही, पृ० ३७
३. कवि कीर्तन—वियोगी हरि, पृ० ३३, ३४ प्र० सं०
४. राधा कृष्ण ग्रंथावली—सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, पृ० १७२

दिल्ली दरबार तो नहीं, पर दिल्लीश्वर का स्पष्ट उल्लेख किया है। यह दिल्लीश्वर कौन था इसका आभास इससे नहीं मिलता। डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन महोदय ने महादेव प्रसाद के 'साहित्य भूखन' के आधार पर भारतेन्दु की ही बात कही है, उनका कथन है कि घनानन्द जाति के कायस्थ थे और मुहम्मद शाह के मुंशी थे—

According to the Sahitya Bhukhan of Mahadeo Prasad he was a Kayastha by Caste and Mohammad Shah's Munshi.[1]

ग्रियर्सन के इस कथन से तो ये केवल मुंशी ही मालूम होते हैं, पर लाला भगवानदीन ने अपनी लक्ष्मी पत्रिका में घनानन्द के सम्बन्ध में जो लेख लिखा था उसके अनुसार ये दिल्लीश्वर मुहम्मद शाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे।[२] 'मीर मुंशी' के सम्बन्ध में अपनी विशेष टिप्पणी श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने यों दी है—मीर मुंशी का अर्थ है मुंशियों में श्रेष्ठ अथवा सबसे बड़ा मुंशी। और उनका विचार है कि छोटे ओहदे से धीरे-धीरे ये बड़े ओहदे पर पहुँचे थे। मुंशी से बढ़ते-बढ़ते मुंशियों में प्रधान होना ही अधिक सामान्य बात है। अतः यह प्रसिद्ध हो गया कि यह मीर मुंशी हो गये थे।[3]

ज्ञानवती त्रिवेदी ने घनानन्द को 'मीर मुंशी' होने से ज्यादा संभावना उनके प्राइवेट सेक्रेटरी होने-की की है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—'बादशाह का खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो एकदम नवीन हो। अतः घनानन्द भी पहले किसी अन्य पद पर आरूढ़ रहे होंगे और फिर बाद में बादशाह के खास कलम नियुक्त हुये होंगे।[४]

(ii) सुजान और उनके सम्बन्ध में प्रचलित किंवदंतियाँ—गोस्वामी राधाचरण ने अपने उस छप्पय में जिसे पिछले पृष्ठों में उद्धृत किया गया है—कहा

---

1. The Modern Vernacular literature of Hindusthan—A. G. Grierson, Page 92
२. रसखान और घनआनन्द, पृ० ३७
३. घनानन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १७
४. वही, पृ० १८

है 'परम सुजान-सुजान छाप पद कवित बनाये।' वस्तुतः यह सुजान कौन थी और घनानन्द से उसका किस प्रकार सम्बन्ध हुआ था, इस पर घनानन्द के विद्वानों ने काफी जम कर विचार किया है। किंवदंतियों के अनुसार सुजान एक वेश्या थी और उससे घनानन्द जी बहुत प्रेम करते थे। घनानन्द के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि उन्होंने मुहम्मद शाह के कहने पर गाना नहीं गाया, लेकिन जब सुजान ने कहा तो वे प्रसन्न होकर गाने लगे। इसी कहानी को आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में और वियोगी हरि ने 'ब्रजमाधुरी सार' में दुहराया है। यह 'सुजान' शब्द 'सुजान सागर' में जगह-जगह आया है और 'सुजान' के साथ ही उसका संक्षिप्त रूप 'जान' शब्द भी यथा स्थान प्रयुक्त हुआ है।

(iii) **सुजान के विभिन्न अर्थ**—कहा जाता है कि जब बादशाह मुहम्मद शाह ने इन पर नाराज होकर अपने दरबार से इन्हें निकाल दिया तो इन्होंने अपने साथ सुजान से भी चलने के लिये आग्रह किया, लेकिन सुजान ने इस आग्रह को स्वीकार नहीं किया, अन्ततः घनानन्द जी के हृदय को इससे बड़ी पीड़ा हुई और वे अतिशय दुखित होकर वहाँ से चले गये और वृन्दावन में एक भक्त बन गये। भक्त हो जाने पर भी उन्होंने 'सुजान' शब्द को त्यागा नहीं और उसका प्रयोग बराबर अपनी रचनाओं में किया है। यह शब्द कहीं राधा के लिये प्रयुक्त हुआ है और कहीं कृष्ण के लिये, पर यह प्रेमी और प्रेमिका के भी अर्थ में व्यवहृत हुआ है।

इधर आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र को आजमगढ़ से प्राप्त एक हस्तलेख में सुजान के ११ छन्द प्राप्त हुये हैं। इन छन्दों में 'सुजान' के साथ ही 'सुजानराइ' शब्द भी मिला है। इस 'राइ' के आधार पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनुमान लगाया है कि यह कहीं 'प्रवीन राइ' की ही भाँति न हो। यह सत्य हो तो 'प्रवीन राइ' की भाँति 'सुजान राइ' किसी पातुर का नाम है।[1]

कृष्णानन्द व्यास के प्रसिद्ध विशाल पद संग्रह 'राग कल्पद्रुम' में भी सुजान के चार पद मिले हैं। इनमें से दो पदों में 'प्रभु सुजान' छाप है और एक में

१. घनआनन्द ग्रंथावली—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६४

महाराज बहादुर को सम्बोधित किया गया है और एक पद के अन्त में कहा गया है—'शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनो ।'

आचार्य मिश्र ने इस सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी देते हुये कहा है—जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मद शाह के दरबार में कोई 'सुजान' 'वेश्या' इसे पढ़ या गा रही है ।[१] इसके अतिरिक्त डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त कुछ भड़ोए पर डॉ० मनोहर लाल गौड़, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कुछ विचार किया है। इन भड़ोओं का कर्ता ऐसा प्रतीत होता है कि घनानन्द से चिढ़ा हुआ है और दूसरा तथ्य यह उद्घाटित हुआ है कि सुजान हुरकिनी और तुरकिनी थी ।[२]

(ङ) वैराग्य एवं मृत्यु—यह पहले कहा जा चुका है कि आनंदघन मुहम्मद शाह के दरबार से निष्कासित कर दिये गये । वस्तुतः दरबार से उनका निष्कासन दरबारियों के कुचक्र के कारण हुआ । वे बादशाह मुहम्मद शाह की दृष्टि में इतना जम चुके थे कि दरबारियों को यह किसी भी प्रकार से सह्य नहीं था । फलतः उन्होंने घनानन्द को दरबार से निकलवा कर चैन लिया । अपने जीवन में इस प्रकार के अपमान का अनुभव घनानन्द ने कभी नहीं किया था, अतः भौतिक जीवन की ऐषणा के प्रति उन्हें बड़ी विरक्ति हो गई और वे दिल्ली दरबार को त्याग कर वृन्दावन चले गये और वहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये । उनके इस विरक्त जीवन का उल्लेख मानवीय डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन ने इस प्रकार किया है—

Before his death he retired to Brindaban and Was killed in the capture of Mathura by Nadirshah.[3]

अपने वृन्दावन वास के सम्बन्ध में आनन्दघन जी ने कई छन्दों में उल्लेख किया है । वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य और वृन्दावन की पवित्र रेणुका का वर्णन करते समय वे अघाते नहीं थे । वृन्दावन के साथ ही वहाँ प्रवाहित होने वाली

१. घनानन्द ग्रंथावली, पृ० ६५
२. घनानन्द ग्रन्थावली, पृ० ६६
3. The Modern Vernacular literature of Hindusthan. A. G. Grierson, Page 92

यमुना के सौन्दर्य और उससे प्राप्त आनन्द का चित्रण कवि ने बड़ी सहृदयता और भक्त-सुलभ भावुकता के साथ किया है। यमुना विषय का एक छन्द देखें—

आंखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबोई है।
गौर स्याम रूप आदरस है दरस जाको,
गुपित प्रकट भावना विसेखिबोई है।
जुग कूल सरस सलाका दीठि परस ही,
अंजन सिंगार रूप अवरेखिवेई है।
आनन्द के घन माधुरी को झर लागि रहे,
तरल तरंगनि की गति लेखिवोई है।[1]

इस छन्द से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आनन्दघन ने वृन्दावन में कालिंदी के तट पर रह कर यमुना के तरंगों के सौन्दर्य का निरीक्षण भली भाँति किया था, और यमुना के दो तट रूप शलाका द्वारा शृङ्गार रूप यमुना के जल को आंखों में अंजन की भाँति लगाया था। यही नहीं, यमुना भक्त आनंदघन के लिए उस आदर्श (दर्पण) की भाँति थी जिसमें गौर (गौरांगी राधा) और श्याम (श्री-कृष्ण) की मंजुल मूर्ति प्रतिबिम्बित होती थी।

(च) मृत्यु विषयक ऐतिहासिक साक्ष्य—घनानन्द जी की मृत्यु कब हुई और कैसे हुई, इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पहले भारतेन्दु कृत 'सुजान शतक' की भूमिका के आधार पर प्रायः यही कहा जाता रहा कि आनंदघन की मृत्यु नादिरशाह के कत्लेआम के समय हुई और वे नादिरशाह के सैनिकों द्वारा मथुरा में मारे गये। इस सम्बन्ध में श्री वियोगी हरि ने एक कहानी इस प्रकार बताई है—

''संवत् १८९६ में नादिरशाह के समय मथुरा में कुछ बदमाशों ने नादिर-शाह के सिपाहियों के कह दिया—'वृन्दावन में फकीर के वेष में बादशाह का मीर मुंशी रहता है, उसके पास बड़े-बड़े-कीमती जवाहरात हैं, उसे जाकर क्यों नहीं लूटते। सिपाहियों ने फक्कड़ आनन्दघन को घेर लिया। उन्होंने इनसे

1. घनआनंद और आनंदघन—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७०

कहा—जर जर जर अर्थात् धन धन धन ।'

आनंदघन ने जर को पलट कर तीन मुट्ठी रज उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा ब्रजरज के और था ही क्या ? मजाक समझ कर जालिम सिपाहियों ने उनका एक हाथ काट डाला।''[1] कहा जाता है कि मरते समय उन्होंने तकिया पर अपने खून से जो कवित्त लिखा था, वह इस प्रकार है—

बहुत दिननि की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन कों,
गहि गहि राखति ही, दै दै सनमान को।
झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास ह्वै कैं,
अब न घिरत घनआनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करिके पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसों लै सुजान को।[2]

वियोगी हरि के साथ प्रायः हिन्दी के सभी विद्वानों ने नादिरशाह के कत्ले-आम का जिक्र अपने इतिहास ग्रन्थों में किया है, पर कुछ विद्वानों ने रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह की 'राम रसिकावली' में उल्लिखित बातों के आधार पर घनानन्द की मृत्यु विषयक घटनाओं को कुछ नये सिरे से विचार किया है। यों रघुराज सिंह ने भी उनकी मृत्यु मथुरा में ही बताई है और यह भी लिखा है कि दिल्ली के किसी शहजादे के हुक्म से म्लेच्छों ने उन्हें मार डाला, पर इस किंवदन्ती में ऐतिहासिक सत्य कितना है, इस पर विचार कर लेना सर्वथा उचित होगा। इस सम्बन्ध में हम सबसे पहले रीवा नरेश के उस कथन को अविकल उद्धृत कर रहे हैं जिसमें उक्त घटना का पूर्ण संकेत मिलता है—

एक भक्त का पुनि कहौं, घनआनन्द इतिहास।
घनआनंद है नाम जिन, सुनत हरत भव-त्रास।

---

१. ब्रजमाधुरी सार—सं० वियोगी हरि, पृ० २५८, द्वि० सं०
२. घनआनंद ग्रन्थावली—सुजानहित, छं० सं० ५४

मथुरा पुरी मलेच्छन घेरे, लाखों यवन खड़े चहुँ फेरे।
कारण तासु सुनो अब सोई, दिल्ली में शहिजादा कोई।
एक समय मधुपुरी सिधायो, सबै मथुरियन हास बढ़ायो।
पनही को रचि कै यक माला, डार्यो शहिजादा के भाला।
सो प्रकोपि निज कटक बुलायो, चहुँ किति मथुरा पुरी घिरायो।
दीन्हयों हुकुम नगर मँह जेते, अब बचि जाँय जियत नहि तेते।
मारन लगे मलेच्छ प्रचारी, बचे न माथुर-भटहु भिखारी।
घन आनंद वंशीवट पाहीं, बैठे रहे भावता मांही।
राधा माधव के मधिरासा, सखी रूप छवि पीवन आसा।
हाथे लीने रहे मुखारी, तेहि क्षण में भावना पसारी।
सोइ भावना मँह गिरधारी, बीरी दीन्हीं पानि पसारी ॥[१]

वस्तुतः मथुरा में घनानन्द के संबंध में जिस नादिरशाह के आक्रमण की बात दुहरायी जाती है, उसका उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता। हाँ, मथुरा में अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की चर्चा अवश्य हुई है। इस बात का उल्लेख सबसे प्रथम बार बाबू राधा कृष्णदास ने नागरीदास के जीवन चरित्र के संदर्भ में बहुत पहले किया था।[२] इसके पश्चात् श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने इस आक्रमण की ऐतिहासिकता पर सम्यक् प्रकाश डाल कर यह सिद्ध कर दिया कि मथुरा में यह आक्रमण अब्दाली का ही था, किसी अन्य का नहीं। इस सम्बन्ध में श्री ज्ञानवती त्रिवेदी के विचार द्रष्टव्य हैं :—

उन्होंने महाराज रघुराज सिंह की उक्त पंक्तियों के सम्बन्ध में अपनी जो टिप्पणी प्रस्तुत की है, वह निश्चय ही अति महत्व की है—'इस अवतरण में ध्यान देने की बात यह है कि इसमें नादिरशाह का उल्लेख न कर इस बात का निर्देश किया गया है कि दिल्ली का कोई शाहजादा क्रुद्ध होकर मथुरा पर चढ़ आया था और उसके कत्लेआम में घनानन्द जी मारे गये थे।'

रघुराजसिंह जू देव के इस कथन को सामने रख कर यदि हम इतिहास पर

१. रामरसिकावली—रघुराजसिंह जू देव, पृ० ८०८, सं० २०१३ का संस्करण
२. राधाकृष्णदास ग्रन्थावली—सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, पृ० १७३

दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट पता चलता है कि सन् १७५७ ई० में जब अहमद शाह अब्दाली ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की तभी उसने मथुरा-वृन्दावन में अपनी कट्टरता, नृशंसता और धन लोलुपता का भी सबसे अधिक क्रूर परिचय दिया।[१]

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जदुनाथ सरकार ने अब्दाली की क्रूरता का वर्णन अपने शब्दों में इस प्रकार किया है—'Move into the boundaries of accused jat and in every town and district held by him slay and Plunder. The city of Mathura is a holy place of the Hindus. Let it be put entirely to the edge of the sword. UP to Agra have not a place standing.'[2]

The Shah also conveyed a general order to the army to plunder and slay at every Place thay reached.

इतिहास के इस उद्धृत अंश से स्पष्ट पता चलता है कि रघुराज सिंह ने अपनी राम-रसिकावली में जिस शाहजादे के क्रोध की बात लिखी है, वह यही है। यही नहीं, जाटों के प्रति किया गया उसका यह क्रोध समस्त हिन्दू जनता के क्षय का कारण बना।

मथुरा को विध्वंस करते हुए शाह अब्दाली वृन्दावन पहुँचा और वहाँ के भी साधु संन्यासियों को नहीं छोड़ा—

Brindaban, seven miles north of Mathura could not escape, as its wealth was indicated by its many temple. Here another general massacre was practiced upon the inoffensive monks of the most pacific order of Vaishnu's worshipers.[3]

सरकार के इस कथन से स्पष्ट आभास मिलता है कि परम वैष्णव कविवर घनानन्द जी वृन्दावन में इसी आक्रमण के बुरी तरह शिकार हो गये।

---

१. घनआनन्द—ज्ञानवती त्रिवेदी
2. Fall of the Mogul empire—j. Sarkar, Vol. II, Page 117
3. Fall of the Mogul empire—j. Sarkar, Vol. II, Page 118

२—रचनाएँ

घनानन्द की मुद्रित रचनाओं को सुविधानुसार तीन भागों में बांटा जा सकता है—क. संग्रहीत रचनाएँ, ख. मूल रचनाएँ, ग. अन्य संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त रचनाएँ।

घनानन्द की सर्वप्रथम संगृहीत रचनाओं में 'सुजान शतक' की चर्चा की जाती है। इसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काशी से सन् १८७० में प्रकाशित किया था। इसमें ११९ कवित्त सवैये संकलित किये गये थे। इसके बाद अन्य लोगों द्वारा संकलित संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ, उनकी मूल रचनाओं में 'सुजान सागर' एवं 'विरह लीला' नाम से 'वियोग वेलि' का मुद्रण अवश्य हुआ था। 'सुजान सागर' को ब्रजभाषा के मर्मज्ञ आचार्य एवं कवि बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने सन् १८९७ में बाबू अमीर सिंह के हरि प्रकाश मंत्रालय से प्रकाशित किया था और वियोग वेलि बाबू काशी प्रसाद जायसवाल द्वारा संपादित होकर सन् १९०७ में काशी नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित हुई थी। रत्नाकर जी घनानन्द की रचनाओं के अनन्य प्रेमी थे और उन्होंने उनकी रचनाओं के मनन-अध्ययन एवं पारायण में बहुत समय लगाया था। उन्होंने घनानन्द जी के शब्दों की एक अनुक्रमणी भी तैयार की थी जो आज भी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के 'रत्नाकर संग्रह' में सुरक्षित है। उक्त दोनों मूल ग्रन्थों के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् बाबू अमीर सिंह ने 'सुजान सागर' में कुछ और पदों को बढ़ाकर 'रसखान और घनानन्द' नाम से एक पुस्तक सन् १९२९ में काशी नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित की थी। अन्य संग्रह ग्रन्थों में भी इनके फुटकर मुद्रित छन्द देखने को मिले हैं। सर्वप्रथम इनके कुछ छन्दों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने 'सुन्दरी तिलक' में प्रकाशित किया था। उसके अनन्तर सरदार के 'शृङ्गार संग्रह', मन्ना लाल द्विज के 'सुन्दरी सर्वस्व' तथा 'शृङ्गार सुधाकर' जैसे संग्रह ग्रन्थों में भी घनानन्द जी के मुद्रित छन्द देखने को मिले हैं। अन्य संग्रह ग्रन्थों में ब्रजनिधि ग्रन्थावली, भक्तराम कृत 'राग रत्नाकर', कृष्णानन्द व्यास का राग कल्पद्रुम तथा मथुरा के बाबा तुलसी-के 'शृङ्गार सागर' की गणना की जाती है जिसमें घनानन्द के फुटकल पदों का संकलन हुआ है।

सन् १९४२ में ज्ञानवती त्रिवेदी द्वारा लिखित 'घनआनंद' नाम की समीक्षा

के निकल जाने पर सन् १९४३ में घनानन्द की रचनाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण संकलन ग्रन्थ 'घनानन्द कवित्त' नाम से सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक रीति साहित्य के निष्णात विद्वान आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हैं। इसमें घनानन्द जी के ५०२ छन्दों का संकलन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता पाठों के वैज्ञानिक एवं साहित्यिक सम्पादन में देखने को मिली है। इसके साथ ही अर्थ को खोलने वाली विस्तृत एवं महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ भी इसमें नियोजित कर दी गई हैं। यह ग्रन्थ मथुरा निवासी स्व० श्री नवनीत चतुर्वेदी की प्रति से संपादित किया गया है। संपादक के कथनानुसार इस प्रति में लिपिकाल तो नहीं है, पर है यह प्राचीन।

'घनानंद कवित्त' के प्रकाशित हो जाने पर सन् १९४४ में साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद से श्री शंभुप्रसाद बहुगुना लिखित 'घन आनंद' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें कवि की ८५ पृष्ठ की भूमिका के साथ ही उसके करीब २५० छन्दों का आकलन हुआ है।

इसके अनन्तर सं० २००२ में आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घन आनंद और आनंदघन' नाम से घनानन्द की उस समय तक प्राप्त सभी रचनाओं का संग्रह प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थावली के मुद्रित हो जाने पर-खोज के कुछ अन्य स्रोतों से उन्होंने घनानन्द के और भी ग्रन्थों की प्राप्ति की, जिन्हें घन आनंद ग्रन्थावली में सं २००९ में प्रकाशित किया।

'घनानन्द ग्रन्थावली' में अद्यावधि प्राप्त रचनाओं का विवरण इस प्रकार दिया गया है—

सुजानहित, कृपाकंद, वियोग वेलि, यमुनायश, प्रीति पावस, प्रेम पत्रिका, प्रेम सरोवर, व्रज विलास, सरस वसन्त, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानु पुरा सुषमा वर्णन, गोकुल गीत, नाम माधुरी, गिरि पूजन, विचार सार, दानघटा, भावना प्रकाश, कृष्ण कौमुदी, धाम चमत्कार, प्रिया प्रसाद, वृन्दावन मुद्रा, व्रजस्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रसनायश, गोकुल विनोद, व्रज प्रसाद, मुरलिका मोद, मनोरथ मंजरी, व्रज व्यवहार, गिरि गाथा, पदावली, परिशिष्ट, प्रकीर्णक, छंदाष्टक त्रिभंगी, परमहंस वंशावली। इन ग्रंथों के मुद्रित होने के पूर्व इनकी चर्चा खोज विवरणों ही में प्राप्त होती थी—

इन्हें काव्य-रसिकों के निकट लाने का समस्त श्रेय काशी के आचार्य पं०

विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र को है, जिन्होंने अथक श्रम एवं अपने वैदुष्य से इन ग्रंथों का संपादन किया। जिस समय श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने अपनी पुस्तक घन आनंद प्रकाशित की थी, उस समय उन्हें घनानन्द की छन्द विषयक निम्नलिखित सामग्री प्राप्त थी :—

१. नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित खोज रिपोर्ट[1]
२. श्री भवानी शंकर याज्ञिक के संग्रहालय की हस्तलिखित पुस्तकें
३. नवीन चन्द्र जी की वियोग वेलि की प्रति
४. कृष्णानन्द व्यास का राग सागरोद्भव
५. ब्रजनिधि ग्रंथावली
६. नागर समुच्चय
७. रसखान और घनानन्द
८. ब्रजभारती आदि पत्रिकाएँ
९. ब्रजमाधुरी सार

लेकिन अब घनानन्द पर काफी संतोषजनक सामग्री प्राप्त हो चुकी है। ऊपर आचार्य मिश्र ने घनानन्द के जिन ग्रंथों की तालिका प्रस्तुत की, उनके सम्बन्ध में पहले नाना प्रकार की अटकल-पच्चू बातें कही जाती थीं। मिश्र बन्धुओं ने अपने विनोद में जिस एक विशाल ग्रथ के छतरपुर में विद्यमान होने की बात बताई थी, वह वस्तुतः एक ग्रंथ नहीं था, अपितु घनानन्द जी के छोटे-छोटे ग्रन्थों का एक संग्रह था। मिश्र बन्धुओं ने इसकी चर्चा करते हुये लिखा है—"हमको ५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रन्थ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला है जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—

प्रिय प्रसाद, ब्रज व्यवहार, वियोग वेलि, कृपाकंद निबन्ध, गिरि गाथा, भावना प्रकाश, गोकुल विनोद, ब्रज प्रसाद, धाम चमत्कार, कृष्ण कौमुदी, नाम माधुरी, वृन्दावन मुद्रा, प्रेम पत्रिका, ब्रज वर्णन, रस वसन्त, अनुभव चन्द्रिका, रंग बधाई, परमहंस वंशावली और पद।[2] कहा जाता है कि मिश्र बन्धुओं ने

---

१. घन आनन्द—शम्भुप्रसाद बहुगुना, भूमिका भाग
२. मिश्रबन्धु विनोद, भाग-२, पृ० ५७४, द्वि सं०

इस ग्रन्थ को प्राप्त करने का काफी प्रयत्न किया लेकिन छतरपुर में स्थित रावराजा डॉ० श्याम बिहारी मिश्र (मिश्र बन्धुओं में मझले बन्धु) ने अपने भाइयों को लिख दिया कि छतरपुर दरबार के पुस्तकालय में घनानन्द का कोई ग्रन्थ नहीं है। इस कथन से स्पष्ट है कि घनानन्द ग्रन्थावली के प्रकाशित होने के पूर्व ये सभी ग्रन्थ अप्राप्य थे। आचार्य मिश्र को छतरपुर के पुस्तकालय के बहुचर्चित ग्रन्थों की प्राप्ति-सूचना डॉ० केशरी नारायण शुक्ल से मिली, जिन्होंने इन ग्रंथों के हस्तलेखों को लंदन संग्रहालय में जाकर देखा था। इसमें छतरपुर वाले लेख की १७ रचनाएँ आ गई हैं। यह हस्तलेख साढ़े पन्द्रह इंच ऊँचा तथा बारह इंच चौड़ा था। इसमें छोटे-बड़े ३८ ग्रंथ संकलित थे।[1] इनकी उक्त सभी रचनाओं को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'सुजानहित' और पदावली को छोड़ कर अन्य सभी रचनाएँ बहुत छोटी-छोटी हैं। छन्दों की संख्या की दृष्टि से 'सुजानहित' में कुल ५०७ छन्द हैं और पदों की कुल संख्या १०५७ है। पुराने काव्य-रसिकों के मध्य घनानन्द जी के जिन ग्रंथों की चर्चा अधिक होती है, उनमें 'सुजानहित', 'घनानन्द कवित्त' और 'वियोग वेलि' या विरह लीला मुख्य है।

घनानन्द के बड़े ग्रंथों में 'सुजान सागर' और 'घनानन्द कवित्त' का उल्लेख बहुत हुआ है, पर इनमें 'सुजान सागर' तो 'सुजानहित' की जगह एक नकली नामधारी ग्रंथ है। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र का विचार द्रष्टव्य है—वस्तुत: 'सुजानहित' के स्थान पर हिन्दी में 'सुजान सागर' एक नकली नाम चल पड़ा है। यह संग्रह, और 'सुजानहित' तो इनकी स्वतन्त्र पोथी है।[2]

'घनानन्द कवित्त' कोई स्वतंत्र पोथी नहीं है, बल्कि 'ब्रजनाथ' नाम के इनके किसी शिष्य ने इनके विभिन्न ग्रंथों से छन्दों को संकलित करके इसे प्रस्तुत किया था और ऐसा अनुमान है कि इस ग्रंथ का नामकरण भी 'ब्रजनाथ' ने किया था। इस ग्रंथ के छन्दों के संग्रह में उन्हें 'लाज बड़ाई' खोकर अति श्रम करना पड़ा था। यही नहीं यह 'बहुजतननि' इनके हाथ आया था, अतः इसके छन्दों के

---

१. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा—डॉ० मनोहर लाल गौड़, पृ० ६३
२. घनानन्द कवित्त—भूमिका भाग, पृ० १३, प्र० सं०

प्रति इन्हें बड़ी स्वाभाविक ममता थी और मित्रों से स्वचित्त रूपी सूत्रों में इन्हें पिरो कर रखने का इन्होंने आग्रह किया था—

एजू सुनो मित्त चित गुन मैं पिरोय इन्हें,
राखौ कंठ मुकता कवित्त करि हार है।

'सुजान सागर' का उल्लेख सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने घनानन्द के स्वसंग्रह 'सुजान शतक' में किया था, संभवतः उसी के आधार पर बाबू जगन्नाथ-दास रत्नाकर ने 'घनानन्द कवित्त' नाम बदल कर 'सुजान सागर' नाम रख दिया। 'घनानन्द कवित्त' में 'सुजान सागर' से ३१ छन्द अधिक हैं। इन अधिक छन्दों में ब्रजनाथ कृत प्रशस्ति भी सम्मिलित है।

घनानन्द के सुजानहित में 'घनानन्द कवित्त' से पाँच छन्द अधिक हैं अर्थात् सुजानहित में कुल ५०७ छन्द हैं और 'घनान्द कवित्त' में ५०२, पर इसमें सम्मिलित ब्रजनाथ कृत प्रशस्ति की गणना नहीं की गई। 'सुजानहित' के सम्बन्ध में आलोचकों का अनुमान है कि कदाचित इसका प्रणयन 'सुजान' के प्रेम को दृष्टि में रख कर ही हुआ होगा।[1]

खोज रिपोर्ट में 'घनानन्द' के नाम पर 'रसकेलि बल्ली' भी अभिहित की जाती है। किन्तु यह भी कोई स्वतन्त्र ग्रंथ न होकर 'घनानन्द कवित्त' की भाँति एक संग्रह ग्रंथ है। खोज रिपोर्ट में इसके बारे में यह भी कहा गया है कि 'घनानन्द कवित्त' रसकेलि बल्ली का ही कुछ उपलब्ध अंश है। जो भी हो, जब तक 'रसकेलि बल्ली' सामने नहीं आती, उसके बारे में अधिक विश्वसनीय रूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

घनानन्द की दूसरी बहुचर्चित रचना वियोग वेलि या विरह लीला है। इसमें प्रेम की बड़ी ही मार्मिक और हृदय ग्राहिणी उक्तियों का दर्शन होता है और इसकी एक सबसे बढ़ कर विशेषता यह है कि इसे कवि ने विदेशी छन्द में ब्रजभाषा को बड़ी कुशलता के साथ ढाल दिया है।[2]

---

१. घनआनन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १५१, प्र० सं०
२. घनआनन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १६३



३—भक्ति तत्व

घनानन्द की समस्त रचनाओं को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें भक्ति एवं प्रेम-तत्व की व्याप्ति बहुत अधिक है। इसका कारण यह है कि भौतिक जीवन के अतिशय राग और दरबार के कृत्रिम वातावरण में मुखरित चाटु-कारिता के स्वरों ने घनानन्द के मानस में एक उत्कट वितृष्णा का भाव उद्‌बुद्ध किया, फलतः वहाँ के चाक्‌चिक्य को त्याग कर ये वृन्दावन की पवित्र रेणुका के अनन्य अनुरागी बन गये। वृन्दावन पहुँचने पर अपमान से आहत मन ब्रज-वल्लभ की जन्म-भूमि के नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर गद्‌गद् हो गया और कवि की समस्त सांसारिक प्रवृत्तियाँ आमुष्मिक चिन्ता में सहज रूप से परिणत हो गईं। अब गर्व-स्फीत मानस में दैन्य और विनम्रता का ऐसा संचार हुआ कि कवि को सहज भाव से कहना पड़ा—

जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहिरे।

यों घनानन्द के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों ने यही कहा है कि ये विरक्त होने पर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे, पर इनकी रचनाओं के आधार पर घनानन्द के कुछ अन्य विद्वानों ने इन्हें वल्लभ सम्प्रदायी भी बताया है।[1] वल्लभ सम्प्रदाय के साथ ही इन्हें हित हरिवंश का भी अनुरागी अभिहित किया गया है। हित हरिवंश सम्प्रदायानुयायी होने का संकेत इनके छन्दों में प्रयुक्त 'हित' शब्द के आधार पर किया गया है। यथा,

क. नित हित संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि अंधार नंद नंदन उदार हैं।

ख. ऐसी दसा जग छायो अंधेर विना हित मूरति कौन संभारे[2]

---

१. घनआनन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० ४४
२. घनआनन्द—श्री ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० ४५-४६

वस्तुतः घनानन्द किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे और उनकी भक्ति भावना का प्रकृत स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में विवादास्पद स्थिति प्रायः बनी हुई है, इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। हाँ, इधर राम-रसिकावली में महाराज रघुराज सिंह ने कुछ महत्वपूर्ण संकेत किये हैं जिनसे इनकी भक्ति के समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। एक स्थल पर उन्होंने इन्हें 'कृष्ण सनेही' बताया है और इसके साथ ही 'सखी रूप छवि पीवन आसा' कह कर सखी सम्प्रदाय की ओर स्पष्टतया संकेत किया है। इसकी पुष्टि लाला भगवानदीन जी ने भी की है—'ये सखी भावना के उपासक और विरह के सच्चे भावुक थे।' इसी हेतु इनकी कविता में यह प्रत्यक्ष प्रभाव है कि कोई कैसा भी कठोर चित्त क्यों न हो पर इनके कवित्त पढ़ या सुनकर गद्‌गद् हो जाता है और नेत्र डबडबा पड़ते हैं।[1]

वैष्णव भक्तों जैसी आत्म तरलता एवं आत्म समर्पण की भावना इनके भक्ति विषयक पदों में स्थान-स्थान पर मिलती है, कवित्तों एवं सवैयों में तो प्रायः प्रेम विवृत्ति और उसकी व्यंजना का अनूठा व्यापार लक्षित होता है, पर इनके पदों में हृदय की ऋजुता और सरलता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। फलतः भगवान की भक्ति भावना से आपूरित हृदय से सहसा ये पंक्तियाँ सहज भाव से निकल पड़ती हैं—

सदा कृपा निधान हो, कहा कहौं सुजान हो,
अमानि दान मान हौ समान काहि दीजिए।[2]

इसमें संदेह नहीं कि भक्त के लिए भगवान की अहेतुकी कृपा से बढ़कर कोई अन्य वस्तु जगत में नहीं है। घनानन्द भी भगवान की कृपा का बहुत बड़ा भरोसा रखते हैं, यह कृपा ही इनके साधना-मार्ग का संबल है। इन्हें पूर्णतया विश्वास है कि भगवान के नेत्रों में कृपा के कान लगे हुए हैं और वह भक्तों के मौन में उनकी पुकार को सुन लेता है—

---

१. रसखान और घनानन्द—बाबू और सिंह, पृ० ३९, द्वि० सं०
२. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सुजानहित)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३५२

मोसे अनहचान को पहचानै हरि कौन,
कृपा-कान-मधि नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि मौन ।[१]

भगवान की कृपा पर जीने वाले आनन्दघन अपनी याचना में कृपा को ही सर्वोपरि महत्व देते हैं, वे मौन होकर भगवान की कृपा का ही जप किया करते हैं—

मौनहू जाकी पुकार करै गुन माल गहे जपै एक कृपा जप ।[२]

भक्त जब भगवान की कृपा का रसपान कर लेता है तो उसे सभी वस्तुओं का स्वाद फीका लगने लगता है । घनानन्द की भक्ति-भावना का यह स्वरूप द्रष्टव्य है—

फीके सवाद परे सबही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।
रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनंद स्याम सुजान कृपा को ।
मोल लियौ बिनु मोल अमोल है प्रेम-पदारथ दान कृपा को ।[३]

भला, भक्त का चातक रूपी चित्त अपनी छोटी-सी चोंच रूपी झोली में आनंदघन की कृपा का अनंत जल कैसे धारण करे और किस प्रकार वह भक्त रत्नों के दान के समय अपनी बुद्धि के पुराने वस्त्र को फैलाए—वहाँ गुंजाइश ही नहीं । इसी भाव की अभिव्यक्ति घनानन्द ने इन शब्दों में की है—

चातिक चित्त कृपा घनआनंद चोंच की खोंच सु क्यों करि धारौं ।
त्यौं रतन कर दान-समै बुधि-जीरन चीर कहा लै पसारौं ।।[४]

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १२
२. रसखान और घनानन्द—सं० अमीर सिंह, छं० सं० ३४५
३. घनानन्द ग्रन्थावली-(कृपा कंद)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ८
४. वही, छं० सं० १७

वस्तुतः घनानन्द किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे और उनकी भक्ति भावना का प्रकृत स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में विवादास्पद स्थिति प्रायः बनी हुई है, इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। हाँ, इधर राम-रसिकावली में महाराज रघुराज सिंह ने कुछ महत्वपूर्ण संकेत किये हैं जिनसे इनकी भक्ति के समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। एक स्थल पर उन्होंने इन्हें 'कृष्ण सनेही' बताया है और इसके साथ ही 'सखी रूप छवि पीवन आसा' कह कर सखी सम्प्रदाय की ओर स्पष्टतया संकेत किया है। इसकी पुष्टि लाला भगवानदीन जी ने भी की है—'ये सखी भावना के उपासक और विरह के सच्चे भावुक थे।' इसी हेतु इनकी कविता में यह प्रत्यक्ष प्रभाव है कि कोई कैसा भी कठोर चित्त क्यों न हो पर इनके कवित्त पढ़ या सुनकर गद्गद् हो जाता है और नेत्र डबडबा पड़ते हैं।[1]

वैष्णव भक्तों जैसी आत्म तरलता एवं आत्म समर्पण की भावना इनके भक्ति विषयक पदों में स्थान-स्थान पर मिलती है, कवित्तों एवं सवैयों में तो प्रायः प्रेम विवृत्ति और उसकी व्यंजना का अनूठा व्यापार लक्षित होता है, पर इनके पदों में हृदय की ऋजुता और सरलता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। फलतः भगवान की भक्ति भावना से आपूरित हृदय से सहसा ये पंक्तियाँ सहज भाव से निकल पड़ती हैं—

सदा कृपा निधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमानि दान मान हौ समान काहि दीजिए।[2]

इसमें संदेह नहीं कि भक्त के लिए भगवान की अहेतुकी कृपा से बढ़कर कोई अन्य वस्तु जगत में नहीं है। घनानन्द भी भगवान की कृपा का बहुत बड़ा भरोसा रखते हैं, यह कृपा ही इनके साधना-मार्ग का संबल है। इन्हें पूर्णतया विश्वास है कि भगवान के नेत्रों में कृपा के कान लगे हुए हैं और वह भक्तों के मौन में उनकी पुकार को सुन लेता है—

---

१. रसखान और घनानन्द—बाबू और सिंह, पृ० ३९, द्वि० सं०
२. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सुजानहित)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३५२

मोसे अनहचान को पहचानै हरि कौन,
कृपा-कान-मधि नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि मौन ।[१]

भगवान की कृपा पर जीने वाले आनन्दघन अपनी याचना में कृपा को ही सर्वोपरि महत्व देते हैं, वे मौन होकर भगवान की कृपा का ही जप किया करते हैं—

मौनहू जाकी पुकार करै गुन माल गहे जपै एक कृपा जप ।[२]

भक्त जब भगवान की कृपा का रसपान कर लेता है तो उसे सभी वस्तुओं का स्वाद फीका लगने लगता है । घनानन्द की भक्ति-भावना का यह स्वरूप द्रष्टव्य है—

फीके सवाद परे सबही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।
रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनंद स्याम सुजान कृपा को ।
मोल लियौ बिनु मोल अमोल है प्रेम-पदारथ दान कृपा को ।[३]

भला, भक्त का चातक रूपी चित्त अपनी छोटी-सी चोंच रूपी झोली में आनंदघन की कृपा का अनंत जल कैसे धारण करे और किस प्रकार वह भक्त रत्नों के दान के समय अपनी बुद्धि के पुराने वस्त्र को फैलाए—वहाँ गुंजाइश ही नहीं । इसी भाव की अभिव्यक्ति घनानन्द ने इन शब्दों में की है—

चातिक चित्त कृपा घनआनंद चोंच की खोंच सु क्यों करि धारौं ।
त्यौं रत्तन कर दान-समै बुधि-जीरन चीर कहा लै पसारैं ।।[४]

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १२
२. रसखान और घनानन्द—सं० अमीर सिंह, छं० सं० ३४५
३. घनानन्द ग्रन्थावली-(कृपा कंद)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ८
४. वही, छं० सं० १७

घनानन्द ने भगवान की भक्ति के समक्ष मोक्ष का प्रायः तिरस्कार किया है और सदैव उनके सामीप्य की ही कामना की है। उनका विश्वास था कि 'सायुज्य' स्थिति प्राप्त हो जाने पर प्रेम-पीड़ा की मधुर अनुभूति सदा के लिए समाप्त हो जाएगी, अतः भिन्नता की स्थिति ही उन्हें काम्य है, और इससे बढ़-कर उनकी दूसरी कामना भी नहीं है। वे आश्रय और आलम्बन, ('प्रेमी और प्रेम पात्र') की, अभिन्नता स्वीकार नहीं करते। यहाँ तो दोनों के मिल जाने पर भी शरीर का पार्थक्य बना ही रहेगा और दो शरीर में एक हृदय का परमा-नन्द प्रवाहित होता रहेगा—

द्वै उर एक भये घुरि कै-घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।

भगवान की कृपा-बल के सहारे घनानन्द ऊर्जस्वित स्वरों में ललकार उठते हैं कि तुम्हें किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भला ऐसे रसपुंज (आनंद राशिकृपा) को प्राप्त करके कौन साधन रूप छीलर (तलैया) को स्पर्श करेगा। जहाँ अमृत रस भरा है, वहाँ तलैया के पंकिल जल का स्वाद कौन लेना चाहेगा ?

ऐसे रसामृत पुंजहि पायकै को सठ साधन छीलर छीहै।[१]
जाकी कृपा नित छाय रही दुख ताप तें बौरे ! बचाय ही लीहै ॥

४—दार्शनिकता

दार्शनिकता—यद्यपि घनानन्द ने किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन पृथक् रूप से नहीं किया, पर उनकी रचनाओं में दार्शनिक अनुभूतियाँ यत्र-तत्र व्याप्त हैं। उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को प्रायः प्रेम एवं शृङ्गारिक संदर्भों में इस प्रकार संग्रहित किया है कि गंभीर-चिन्तक, मननशील अध्येता ही उन्हें

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली-(कृपाकंद)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १५

ढूंढ़ पाते हैं। यों वे सगुणोपासक वैष्णव भक्त थे, पर उनकी रहस्यानुभूति की भी झलक जहाँ-तहाँ मिल अवश्य जाती है। वास्तव में इनकी वाणी में रहस्यात्मकता का बहुत कुछ कारण सखी भाव की उपासना भी हो सकती है जिसमें गोपन एवं रहस्यात्मकता प्रायः विद्यमान रहती है।

प्रेम-व्यंजना के संदर्भ में अपने दार्शनिक विचारों को जैसी सरसता इन्होंने प्रदान की है, वह अन्यत्र कम देखने को मिलती है। पिछले पृष्ठों में इनकी भक्ति चेतना का उल्लेख किया जा चुका है। उसमें भी कवि के हृदय की सरसता, सरलता एवं सहज-भावुकता का रूप पूर्णतया स्पष्ट है। भावों की तन्मयता और हृदय की प्रांजलता का जैसा मणिकांचन योग इन्होंने किया है, वह भक्तिकालीन सूर और तुलसी ही में मिल सकता है, इतर कवियों में नहीं।

(क) ईश्वरानुभूति—इन्होंने ईश्वर के सगुण रूप का वर्णन प्रायः स्थल-स्थल पर किया है, पर उसके निराकार रूप की भी विवेचना कहीं-कहीं की है। अरूप ब्रह्म की चेतना प्रायः रहस्यमय हुआ करती है। यह रहस्यमयता निर्गुणोपासक कबीर आदि में बहुत अधिक मिलती है, किन्तु इसकी झलक घनानन्द की वाणी में भी मिली है। उन्होंने उस चिन्मय स्वरूप की झलक का संकेत करते हुए लिखा है कि जैसे बादलों में क्षण भर के लिए बिजली कौंध कर छिप जाती है और अपनी उत्कट दीप्ति के कारण दिखाई नहीं देती, ठीक उसी प्रकार प्रियतम की झलक एक क्षण के लिए मिलती अवश्य है पर उसकी चकाचौंध से बुद्धि चकित रह जाती है।

चेटक रूप-रसीले सुजान, दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय, कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई।
बातैं बिलाय गई रसना पै हियो उमग्यो कहि एको न आई।
सांच कि संभ्रम हो घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई।[1]

घनानन्द की रहस्यानुभूति प्रायः प्रेममूलक है। निर्गुण सन्तों की भाँति योग-शास्त्र की शब्दावली की आवृत्ति मात्र नहीं। इन्हें इसी से आलोचकों ने

---

१. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३५३

रहस्योन्मुख प्रेमी कवि की संज्ञा दी है। इन्होंने कहीं-कहीं सूफियों जैसी ब्रह्म वियोग की बड़ी मार्मिक अनुभूति व्यक्त की है—

अन्तर हौ किधौं अन्त रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि-हाय तुम्हैं धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं।[1]

यद्यपि घनानन्द की वाणी पर सूफियों का स्पष्ट प्रभाव है, पर उन्होंने इस प्रभाव का ग्रहण अपने ढंग से किया है और उस पर सूफियों जैसी दार्शनिकता लादने का प्रयास कहीं नहीं किया। वे रहस्यमयता की चर्चा करते हुए भी निर्गुण सन्तों से भी सर्वथा भिन्न रहे और अपना लक्ष्य सदैव सगुण रूप को ही बनाया। इस सम्बन्ध में घनानन्द के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी इसी बात को दुहराते हैं—

'घनानन्द ने जो निर्गुण आधार लेकर कुछ रहस्यमयी-उक्तियाँ कही हैं उनमें श्री कृष्ण ही उनके लक्ष्य हैं। रहस्य की प्रवृत्ति इन कवियों में कभी-कभी अवश्य जगती थी, पर कबीर या जायसी की भाँति रहस्यदर्शिता इनका साध्य कभी नहीं बनी। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इन्होंने विदेशी प्रवृत्ति को ग्रहण करने का ढंग बताया। नागरीदास आदि सखी भाव के उपासकों में सूफी प्रभाव जो अपनी विशेष झलक मार रहा है उसका कारण यही है कि वे उसे छिपा नहीं सके।'[2]

सगुणवादी भक्तों ने आत्म-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हुए भी उपास्य के अन्तर को प्रायः बनाए रखा। उन्हें ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता काम्य न थी। जहाँ कहीं प्रेम के रहस्यवाद की चर्चा की गई वहाँ आलोचक बराबर यह कहा करते थे कि यह प्रेम, मिलन की प्रतीक्षा में, सदैव विरहोन्मुख रहा। स्व० बाबू जयशंकर प्रसाद ने देव की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करके इस

---

१. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१६

२. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६, प्र० सं०

स्थिति को अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है। देव की प्रसिद्ध रचना—'हौं ही ब्रज वृन्दावन मोही में बसत सदा जमुना तरंग स्याम रंग अवलीन' के सम्बन्ध में उनका कथन है—'परन्तु वे वृन्दावन ही बन सके, श्याम नहीं।'[1]

इससे स्पष्ट है कि सगुणोपासक-भक्त घनानन्द भी उस अर्थ में रहस्यवादी न थे। जिस अर्थ में 'हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया' कहने वाले कबीर आदि निर्गुण सन्त थे।

(ख) जीव विषयक धारणा—जीव ईश्वर का अंश है और ब्रह्म व्यापक एवं अनन्त होने के कारण समस्त जीवों में व्याप्त रहता है। जीव सांसारिक माया, अज्ञानता और अपने अहम् के कारण ईश्वर का सामीप्य प्राप्त नहीं कर पाता। घनानन्द का विश्वास है कि परमात्मा तो हमारे निकट है, लेकिन हम अपनी-अज्ञता के कारण उससे दूर हैं—'हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ, तुम संग बसौ हम न्यारी रहैं।'[2] इस प्रकार का भ्रम जीव की अज्ञानता का ही बोधक हो सकता है। घनानन्द को यह विश्वास है कि मेरे ऊपर कृपा के घनआनन्द माधव राधा की वर्षा होती है और मैं उनके रस से सदैव भीगा करता हूँ। बिना उस रस के लोग स्रम सूल सहते हैं और 'भ्रम-भूल' को प्राप्त करते रहते हैं—

मेरे कृपा घनआनंद है रस भीजैं सदा जिहिँ राधिका माधौ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सुन एक न आधौ।[3]

(ग) जगत—घनानन्द ने भी संसार को नश्वर तथा असार माना है। यह 'जीवन छल' है, फिर भी जीव उस छलावे में फँसा हुआ है। इसी लिए घनानन्द अपने जड़ जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—अरे जड़ जीव, अब चेत जा और समझ ले कि तुम कहाँ से आये हो और तुम्हें कहाँ जाना है—'अजौं चेति जड़ जीव किनि, कित आयो जैबो कहाँ।'[4] जिस संसार की यथार्थता का

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—जयशंकर प्रसाद, पृ० ६८, तृ० सं०, २००४
२. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०), छं० सं० ४८३
३. घनआनन्द ग्रन्थावली-(कृपाकंद), छं० सं० २४
४. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०), छं० सं० ४३५

चित्र कबीर आदि निर्गुण संतों एवं तुलसी आदि सगुण मार्गी संतों ने खींचा है उसका चित्र घनानन्द ने भी अपने ढंग से अंकित किया है। कवि का कथन है कि जिस शरीर से तुम्हें इतना प्रेम है, वह क्षण में मिट्टी हो जाएगा और समस्त सांसारिक नाता तत्क्षण समाप्त हो जाएगा। अतः प्राननि के संगी श्याम को क्यों नहीं संभालता (स्मरण करता) ? क्या जानता नहीं है कि जीवन की अवधि समाप्त होने पर यह श्वास निकल जाएगी और धूम्र धाम के तुल्य ये धन और गृह यहीं पड़े ही रह जाएंगे।[1]

५—काव्य समीक्षा

(क) **काव्य-स्वरूप**—घनानन्द की काव्य रचना का स्वरूप क्या था और वह पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से किस प्रकार भिन्न था, इसे समझने के लिए घनानन्द-काव्य के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ का ही साक्ष्य अधिक प्रमाणित और विश्वसनीय होगा। घनानन्द की काव्यगत मौलिकता का उद्घोष करते हुए उन्होंने एक जगह लिखा है—

नेही महा, ब्रजभाषा प्रबीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग की रीति मैं कोबिद, भावना भेद-स्वरूप को जानै।
चाह के रंग मैं भीज्यो हियो, बिछुरैं मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै॥

प्रम सदा प्रति ऊँचो लहैं सु कहैं इहि भांति की बांत छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई को धोखें रहै, ह्यां प्रबीनन की मति जाति जकी।
समुझै कबिता घनआनँद की हिय आंखिन नेह की पीर तकी॥[2]

१. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०), छं० सं० ४५५
२. घनानंद कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १, प्र० सं०

इन छन्दों में प्रशस्तिकार ने उन सभी विशेषताओं को उद्घाटित कर दिया है जो घनानन्द के काव्य में पायी जाती हैं। दूसरे शब्दों में ब्रजनाथ का कथन है कि जो अनन्य प्रेमी हो, ब्रजभाषा में प्रवीन हो, सौन्दर्य की सूक्ष्मता से अभिज्ञ हो, संयोग एवं वियोग श्रृङ्गार की रीतियों का पारखी हो, भावों के अनेक स्तरों एवं स्वरूपों को समझता हो, प्रेम-रंग से जिसका हृदय आर्द्र हो, जो प्रियतम के वियुक्त होने और बिछुड़ने पर शान्ति का अनुभव न करता हो, जो भाषा के अनेक रूपों एवं उसके वैशिष्ट्य में दक्ष हो, वही घनानन्द जी की कविता के मर्म एवं उसके भाव को बतला सकता है। इसके साथ ही दूसरे छन्द में इस बात का भी संकेत किया है कि लोग 'जग की कविताई' (रीतिबद्ध काव्य) के धोखे में ही पड़े रहते हैं, अर्थात् उनकी दृष्टि में सबसे उच्चकोटि की रचना रीति कवियों की ही है, लेकिन जब घनानन्द की काव्य मंजूषा खुलती है तो यहाँ प्रवीणों की भी बुद्धि उस मंजूषा के रत्नों से—चौंधिया जाती है। अतः इन काव्य रत्नों को परखने के लिए हृदय की आँखें (Insight) अपेक्षित हैं और इसके साथ ही प्रेम पीड़ा की भी अनुभूति परमावश्यक है।

उक्त प्रशस्ति के अन्तर्गत घनानन्द की अन्यान्य विशेषताओं के साथ जो एक अतिशय-महत्व की बात संकेतित है, वह है 'जग की कविताई'। वस्तुतः 'जग की कविताई' और 'घनानन्द की कविताई' का स्वर मूलतः किस प्रकार भिन्न था और एक दूसरे की रचना में क्या तात्त्विक भेद था, इसका विवेचन यहाँ सर्वथा प्रसंग प्राप्त एवं औचित्य पूर्ण है।

यह एक विचारणीय तथ्य है कि श्रृङ्गार-काल की एक लम्बी एवं दीर्घ परम्परा के अन्तर्गत जितने भी कवि हो गये हैं वे सबके सब शास्त्रानुगत और प्राचीन काव्य रूढ़ियों के अनुसरणकर्ता हैं, उनके काव्य का स्वर कुछ हेर-फेर के साथ प्रायः एक ही है, उनके स्वरों के माधुर्य (Melody) में भी कोई ताजगी (freshness) और नवीनता की झलक नहीं मिलती। इसमें संदेह नहीं कि इसी प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके ही प्रशस्तिकार ने ऐसे काव्य को जग की कविताई की संज्ञा दी। यह जग की कविताई थी रीतिबद्ध शैली में रचित काव्य, जिसे सामने रखकर घनानन्द की स्वच्छन्दतावादी रचनाओं की नूतन भाव-भंगिमा, सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, वेदना-निवृत्ति और प्रेम-वृत्तियों के अनेक उतार-चढ़ाव की विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है। घना-

चित्र कबीर आदि निर्गुण संतों एवं तुलसी आदि सगुण मार्गी संतों ने खींचा है उसका चित्र घनानन्द ने भी अपने ढंग से अंकित किया है। कवि का कथन है कि जिस शरीर से तुम्हें इतना प्रेम है, वह क्षण में मिट्टी हो जाएगा और समस्त सांसारिक नाता तत्क्षण समाप्त हो जाएगा। अतः प्राननि के संगी श्याम को क्यों नहीं संभालता (स्मरण करता)? क्या जानता नहीं है कि जीवन की अवधि समाप्त होने पर यह श्वास निकल जाएगी और धूम्र धाम के तुल्य ये धन और गृह यहाँ पड़े ही रह जाएँगे।[१]

५—काव्य समीक्षा

(क) **काव्य-स्वरूप**—घनानन्द की काव्य रचना का स्वरूप क्या था और वह पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से किस प्रकार भिन्न था, इसे समझने के लिए घनानन्द-काव्य के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ का ही साक्ष्य अधिक प्रमाणित और विश्वसनीय होगा। घनानन्द की काव्यगत मौलिकता का उद्घोष करते हुए उन्होंने एक जगह लिखा है—

नेही महा, ब्रजभाषा प्रबीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग की रीति मैं कोबिद, भावना भेद-स्वरूप को जानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कबित्त बखानै॥

प्रम सदा प्रति ऊँचो लहै सु कहै इहि भांति की बांत छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई को धोखें रहै, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
समुझै कबिता घनआनँद की हिय आंखिन नेह की पीर तकी॥[२]

---

१. घनआनन्द ग्रन्थावली-(सु० हि०), छं० सं० ४५५

२. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १, प्र० सं०

इन छन्दों में प्रशस्तिकार ने उन सभी विशेषताओं को उद्घाटित कर दिया है जो घनानन्द के काव्य में पायी जाती हैं। दूसरे शब्दों में ब्रजनाथ का कथन है कि जो अनन्य प्रेमी हो, ब्रजभाषा में प्रवीन हो, सौन्दर्य की सूक्ष्मता से अभिज्ञ हो, संयोग एवं वियोग शृङ्गार की रीतियों का पारखी हो, भावों के अनेक स्तरों एवं स्वरूपों को समझता हो, प्रेम-रंग से जिसका हृदय आर्द्र हो, जो प्रियतम के वियुक्त होने और बिछुड़ने पर शान्ति का अनुभव न करता हो, जो भाषा के अनेक रूपों एवं उसके वैशिष्ट्य में दक्ष हो, वही घनानन्द जी की कविता के मर्म एवं उसके भाव को बतला सकता है। इसके साथ ही दूसरे छन्द में इस बात का भी संकेत किया है कि लोग 'जग की कविताई' (रीतिबद्ध काव्य) के धोखे में ही पड़े रहते हैं, अर्थात् उनकी दृष्टि में सबसे उच्चकोटि की रचना रीति कवियों की ही है, लेकिन जब घनानन्द की काव्य मंजूषा खुलती है तो यहाँ प्रवीणों की भी बुद्धि उस मंजूषा के रत्नों से—चौंधिया जाती है। अतः इन काव्य रत्नों को परखने के लिए हृदय की आँखें (Insight) अपेक्षित हैं और इसके साथ ही प्रेम पीड़ा की भी अनुभूति परमावश्यक है।

उक्त प्रशस्ति के अन्तर्गत घनानन्द की अन्यान्य विशेषताओं के साथ जो एक अतिशय-महत्व की बात संकेतित है, वह है 'जग की कविताई'। वस्तुतः 'जग की कविताई' और 'घनानन्द की कविताई' का स्वर मूलतः किस प्रकार भिन्न था और एक दूसरे की रचना में क्या तात्त्विक भेद था, इसका विवेचन यहाँ सर्वथा प्रसंग प्राप्त एवं औचित्य पूर्ण है।

यह एक विचारणीय तथ्य है कि शृङ्गार-काल की एक लम्बी एवं दीर्घ परम्परा के अन्तर्गत जितने भी कवि हो गये हैं वे सबके सब शास्त्रानुगत और प्राचीन काव्य रूढ़ियों के अनुसरणकर्ता हैं, उनके काव्य का स्वर कुछ हेर-फेर के साथ प्रायः एक ही है, उनके स्वरों के माधुर्य (Melody) में भी कोई ताजगी (freshness) और नवीनता की झलक नहीं मिलती। इसमें संदेह नहीं कि इसी प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके ही प्रशस्तिकार ने ऐसे काव्य को जग की कविताई की संज्ञा दी। यह जग की कविताई थी रीतिबद्ध शैली में रचित काव्य, जिसे सामने रखकर घनानन्द की स्वच्छन्दतावादी रचनाओं की नूतन भाव-भंगिमा, सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, वेदना-निवृत्ति और प्रेम-वृत्तियों के अनेक उतार-चढ़ाव की विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है। घना-

नन्द के काव्य-स्वरूप की विवेचना करते हुए रीति शैली में रचित काव्य से उसके पार्थक्य एवं वैशिष्ट्य का निरूपण डॉ० रामअवध द्विवेदी ने एक स्थल पर यों किया है—Its sincerity, spontaneity and the beauty of its language are moving qualities in Ghanananda's poetry; in the somewhat, deary period of Riti poetry his personally is as alluring as a green spot in a sandy desert.[1]

(i) **शास्त्रीय एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य**—यह एक आश्चर्य की बात है कि १८वीं शताब्दी में हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में रीतिमुक्त काव्य (Romantic poetry) का आरम्भ एक साथ हुआ। अंग्रेजी साहित्य में काव्य की दो धाराओं—क्लासिकल (शास्त्रीय) एवं रोमांटिक (स्वच्छन्दता वादी)—का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है और १८वीं शताब्दी के समस्त साहित्य को उन्होंने तीन भागों में विभाजित किया है :—(१) १७००-१७४० तक पोप का युग अथवा आगस्टन युग, (२) १७४०-१७७० तक डॉ० जानसन का युग तथा (३) १७७०-१७७८ तक स्वच्छन्दता वाद के पूर्वाभास का युग।[2] सन् १७८८ के पश्चात् तो रोमांटिक काव्यधारा अबाध गति से प्रवाहित होने लगी। इसके पूर्व जिस काव्य की रचना हुई उसमें शास्त्रीयता की झलक अधिक है, अतः इस स्कूल के क्लेसिक और शास्त्रीयता के बंधन से मुक्त कवि को स्वच्छन्दतावादी कहा गया—एक को प्राचीनता का अनुगत और दूसरे को नवीनता का उपासक बताया गया। पोप, जानसन आदि को शास्त्रीय स्कूल का कवि कहा गया और उनके काव्य की प्रवृत्तियों को अधिक रूढ़िगत (Conventioal) समझा गया। इसके विपरीत लेसिंग, कालरिज, वर्ड्सवर्थ आदि को रोमांटिक स्कूल का अनुगत और नूतन भाव-भंगिमा एवं विचारों का कवि माना गया—इस सम्बन्ध में आर० ए० स्कॉटजेम्स का विचार द्रष्टव्य है—

'To the old way of thought and expression belong corneille pope, Addision and even Johnson to the new-Lessing, Goethe Coleridge, wordsworth and the soli tary Blake.'[3]

1. Hindi literature—Dr. R. Dwivedi, Page 128
२. अंग्रेजी भाषा और साहित्य—डॉ० रामअवध द्विवेदी, पृ० १०७-१०८
3. Making of literature—R. A. Scott James, page 161

कहा जाता है कि १८वीं शताब्दी में सामाजिक व्यवस्था ने भी साहित्य पर अपना अमिट प्रभाव डाला और सामाजिक पुनरुत्थान तथा मानवीय स्वतंत्रता के प्रतिपोषक लेसिंग और रूसो आदि ने साहित्य में एक नूतन चेतना की प्राण-प्रतिष्ठा की। इस सम्बन्ध में आर० ए० स्काट जेम्स का तो यहाँ तक कहना है कि रूसो ने तत्कालीन रूढ़िवादी (क्लासिकल) साहित्य को चुनौती नहीं दी, अपितु उस रूढ़िवादी विश्व एवं समाज को चुनौती दी, जिसमें मानवीय स्वतंत्रता का हनन हो रहा था और जिस समाज में मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न होकर परतंत्रता की शृङ्खला में सर्वत्र जकड़ा हुआ है—

Yet it is not literature which Rousseau Challanges, but society. His life and writings were a protest not against classical literary standards, but against the stereotyped order of world. He demands, not the freedom of the artist, but the freedom of man. "Man was born free, and every where he is in chains".[1]

(ii) हिन्दी का रीतिमुक्त काव्य : सामान्य विशेषताएँ—पिछले पृष्ठों में इस बात का संकेत किया जा चुका है कि रीतिकाल की एक सुदीर्घ परम्परा में ज्यादातर कवि काव्य की शास्त्रीय रूढ़ियों से बुरी तरह जकड़े हुये थे, यद्यपि बिहारी, देव और पद्माकर की काव्यानुभूति बहुत 'रोमांटिक स्पिरिट' के मेल में थी, पर परम्परा का इतना बड़ा प्रभाव और दबाव था कि वे उससे मुक्त न हो सके। हाँ, इस युग में परम्परा से विद्रोह करने वाले तथा रूढ़ियों से जूझने वाले भी कुछ कवि थे—जिन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में फुटकर खाते में डाल दिया। इन कवियों में आलम, बोधा, घनानन्द, द्विजदेव और ठाकुर का नाम लिया जाता है। इधर कुछ लोगों ने रसखान और बक्सी हंसराज को भी रीतिमुक्त धारा में रख दिया है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो बेनी कवि को भी रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि स्वीकार किया है। यद्यपि डॉ० द्विवेदी ने बेनी के जिन थोड़े से छन्दों के आधार पर रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि माना है, वह बहुत पुष्ट आधार नहीं है। मुझे तो बेनी रीतिबद्ध काव्य

---

1. Making of literature—R. A. Scott James, Page 161

परम्परा के ही कवि लगते हैं। इधर डॉ० किशोरी लाल गुप्त ने बेनी के सम्बन्ध में ग्रियर्सन के हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास में लिखा है—"यह बेनी भी कान्य कुब्ज बाजपेयी ब्राह्मण थे। इन्होंने सं० १८१७ में 'रसमय' नामक नायिका भेद का ग्रन्थ रचा था।"[1] इससे भी स्पष्ट है कि बेनी वास्तव में एक रीति कवि थे, न कि स्वच्छन्द मार्गी या रीतिमुक्त। एक सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि डॉ० द्विवेदी ने अपने इतिहास में जहाँ अन्य रीतिमुक्त कवियों की भरपूर चर्चा की है, वहाँ न जाने क्यों घनानन्द जैसे स्वच्छन्द काव्य-धारा के अत्युत्कृष्ट कवि को बिल्कुल छोड़ दिया।

रीतिमुक्त काव्यधारा का सर्वप्रथम विस्तृत एवं संतोषजनक विवेचन आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया। उन्होंने रीतिकाल को शृङ्गार काल की अभिधा से मंडित करते हुये सर्वथा नई दृष्टि से समस्त रीतिकाल के वर्गीकरण का अतिशय स्तुत्य प्रयास किया। आचार्य मिश्र ने शृङ्गार काल की अभिधा के औचित्य का स्पष्टीकरण एक स्थल पर यों किया है—'रीतिकाल' नाम रखने से उसके विभाजन का मार्ग ही नहीं मिल पाता, पर शृङ्गारकाल नाम रखने से विभाजन सरलतापूर्वक हो जाता है। उसकी दो शाखाएँ स्पष्ट हो जाएँगी। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध की भी दो शाखाएँ हो सकती हैं— लक्षणबद्ध और लक्ष्यबद्ध। रीतिमुक्त काव्यधारा को भी उन्होंने दो शाखाओं में बाँटा—

(i) लौकिक प्रेम के कवि (ii) अलौकिक (ईश्वरोन्मुखी) प्रेम के कवि। लक्षणबद्ध कवियों में केशव, आचार्य चिन्तामणि, भिखारी दास, देव, मतिराम आदि आते हैं और लक्ष्यबद्ध काव्यकर्त्ताओं में—बिहारी, रसनिधि, पजनेस, सेनापति आदि का उल्लेख होता है। इसी प्रकार रीतिमुक्त कवियों के अन्तर्गत लौकिक प्रेम गायकों में ठाकुर, द्विजदेव, आलम और बोधा की चर्चा की जाती है और ईश्वरोन्मुखी प्रेम के गायकों में घनानन्द और रसखान जैसे प्रेमी भक्त कवि गिने जाते हैं।

हिन्दी के रीतिमुक्त काव्य ने नायक-नायिका भेद, नख-शिख, षट्‌ऋतु वर्णन, काव्य शास्त्रीय विवेचन की बंधी बंधाई परिपाटी का विरोध किया और भाव

---

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—डॉ० किशोरी लाल गुप्त, पृ० १८५

सम्पत्ति, अनुभूतियाँ, आन्तरिकता के महत्त्व को सर्वोपरि स्थान दिया और इसके अतिरिक्त काव्यरूढ़ियों को नये संदर्भों में रख कर नूतन वचन भंगिमा पर बल देना उस काल के कवियों का प्रधान लक्ष्य बन गया। केवल खंजन, मीन, कल्प-वृक्ष की बार-बार आवृत्ति करना इन्हें अभीष्ट न था। इसी से ठाकुर ने इन काव्यरूढ़ियों की घोर भर्त्सना की—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।[1]

कविवर घनानन्द ने भावावेग और आन्तरिकता के महत्त्व को स्वीकार करते हुये रीतिबद्ध काव्य से अपने काव्य का पार्थक्य स्पष्टरूपेण घोषित किया है। उनका स्पष्ट कथन है कि लोग कवित्त बनाने में लगे हैं, काव्य-रचना, काव्य-रचना के लिये करते हैं, पर मेरे कवि व्यक्तित्व का निर्माण तो मेरे कवित्त ही किया करते हैं। दूसरे शब्दों में सुजान के प्रति मेरा सच्चा प्रेम और उसके दर्शन की तीव्र ललक ही हमारी रचना में गहराई, दीप्ति एवं सौन्दर्य उत्पन्न करती है—

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप वढ़ावत।
यों घनआनन्द छावत भावत जान-सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कबित्त बनावत।[2]

---

१. ठाकुर ठसक—सं० लाला भगवानदीन, छं० सं० १२
२. घनआनन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)-छं० सं० २२८

भावावेग और हृदय की उन्मुक्त वृत्तियों का प्रसार करना इन कवियों का मुख्य ध्येय था। काव्यशिल्प की बारीकियों एवं पच्चीकारी से सर्वथा अलग रह कर भावराशि को अधिकाधिक काव्य कलेवर में भर देना इनका प्रकृत अभीष्ट था। इनके काव्य स्वरूप की मीमांसा करते हुये आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कहते हैं—'ये कविता की नपी तुली नाली खोदने वाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करने वाले या मानस रस का उन्मुक्त दान देने वाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (Conscious state) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अंतः संज्ञा (Subconscious state या Unconscious state) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्धृत होती थी।[१] रीतिमुक्त काव्य दरबारी प्रवृत्तियों से सर्वथा अलग था। दरबारों में रह कर भी ये कवि अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण वहाँ बहुत समय तक टिक नहीं सके। घनानन्द और बोधा जैसे कवि इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं कि दरबारी वातावरण और वहाँ का आडम्बर पूर्ण व्यवहार इन्हें प्रिय न था। ये वस्तुतः प्रेम के उन्मुक्त गायक और चातक तथा चकोर की भाँति प्रेम मार्ग के एकनिष्ठ व्रती थे। अतः इनके संकल्प से कोई यदि इन्हें विरत भी करना चाहे तो उसे शायद सफलता न मिलेगी।

(ख) **प्रेम-निरूपण**—प्रेम वृत्तियों का जैसा सजीव निरूपण हिन्दी के रीतिमुक्त कवियों ने किया है, वह अन्यत्र सुलभ नहीं। उनके प्रेम चित्रण में रीतिबद्ध कवियों जैसी निर्जीव चित्रों की आवृत्ति नहीं मिलेगी इन प्रेम के उन्मत्त गायकों ने प्रेम की शिराओं को ठीक से पहचाना था, इससे इनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रेम के पंकिल एवं वासनात्मक चित्रों का अभाव है। इस काव्य में प्रेम ही साध्य है और इस प्रेम को वे ही प्राप्त कर सकते हैं जो निष्कपट हैं और जिनके मानस में वक्रता छू तक नहीं गई है। प्रेम मार्ग के पथिक वे ही बन भी सकते हैं जो सच्चे हैं और जिन्होंने आपनुपों को हृदय से परित्यक्त कर दिया है—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनुपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।[२]

१. घनआनन्द ग्रन्थावली (भूमिका भाग)-पृ० १३
२. घनआनन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)-छं० सं० २६७

प्रेम की विषमता इस काव्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता बतायी गयी है। प्रेम की यह विषमता आलम, द्विजदेव, ठाकुर, बोधा और घनानन्द सभी में मिलती है। यहाँ प्रेमी अपने प्रेम पात्र के लिये जितना तड़पता है, बेचैन रहता है और रह-रह कर अपने हृदय की उद्विग्नता को व्यक्त करता है, प्रेम पात्र को इसकी चिन्ता नहीं। प्रेम का यह एक पक्षीय रूप कदाचित प्रेमी की अनुभूति को उत्कट एवं तीव्र बताने की दृष्टि से प्रदर्शित किया गया है।

रूप-विधान—रूप-चेतना के अनाविल स्वरूप की जैसी हृदयग्राहिणी अभि-व्यक्ति इस काव्य में देखने को मिली है, वह अन्यत्र नहीं। रीतिबद्ध काव्य में प्रायः सौंदर्य-चित्रों का निर्माण ऐन्द्रियता के विस्तृत धरातल पर किया गया है। वहाँ रूप की ऐसी नुमाइश लगाई गई है, जिसमें नायिकाओं के कटाक्ष से अँगुलियों के कट जाने का भय है। वहाँ ऐसे चन्द्रमुख की कमी नहीं है जिन्हें देखने पर बेचारे चन्द्रमा के भूमण्डल पर चू-पड़ने की पूर्ण आशंका है। यहाँ रूप की ऐसी बाजार नहीं लगाई गई है, जिसमें परस्पर कम्पटीशन हो। यहाँ आभूषणों की वैसी ज्योति नहीं है, जहाँ दीपक बुझा देने पर भी 'गेह' में बड़ो उजेरों की भरमार हो।

वक्रता-विधान—वचन-भंगिमा और वक्रता का जैसा विधान इस काव्य में हुआ है वह न तो पूर्ववर्ती न परवर्ती किसी भी काव्य परम्परा में लक्षित नहीं हुआ। विरोध और असंगतियों के आधार पर इस काव्य में भाव-व्यंजना और सांद्र अनुभूति की जैसी टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ निर्मित की गई, वे अपने आप में अत्यन्त अनूठी और अप्रतिम हैं। घनानन्द ने यदि विरोधमूलक शैली को पकड़ा तो ठाकुर ने लोकोक्तियों के विधान द्वारा भाव-व्यंजना के प्रकृष्ट और प्रभविष्णु रूपों को व्यक्त किया।

उपर्युक्त सामान्य विवेचन से स्पष्ट है कि रीतिमुक्त काव्य प्रवृत्ति एवं काव्य शैली दोनों दृष्टियों से रीतिबद्ध शैली के काव्य से सर्वथा भिन्न था। अब हम रीतिमुक्त काव्य की विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए कविवर घनानन्द के काव्य की विशेषताओं का यत्किंचित मूल्याङ्कन प्रस्तुत करेंगे।

वस्तुतः घनानन्द के समीक्षक आज घनानन्द के काव्य में जिस वैशिष्ट्य की खोज करते हैं, उन्हें बहुत पहले घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने अपने

कतिपय छन्दों द्वारा उद्घाटित कर दिया था। ब्रजनाथ की सूक्ष्म दृष्टि ने घनानन्द के काव्य का जैसा मर्म समझा तथा रीति स्वच्छन्द काव्य की मौलिकता का जैसा रूप काव्य रसिकों के समक्ष प्रस्तुत किया, उसके द्वारा हमें घनानन्द को समझने में काफी सहायता मिल सकती है।

प्रेम-व्यंजना—घनानन्द की प्रेम-व्यंजना के महत्त्व एवं वैशिष्ट्य का संकेत ब्रजनाथ ने अपने उस सवैया में किया है, जिसमें कहा गया है कि घनानन्द की कविता का अधिकारी वही हो सकता है जिसने नेह की पीर तकी हो और जो चाह के रंग में भीगा रहे और प्रियतम के बिछुड़ने और मिलने पर शांति न माने। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि घनानन्द के काव्य में प्रेम के उदात्त स्वरूप की बड़ी विशाल एवं विस्तृत भूमिका प्रस्तुत हुई है। इनकी रचना में प्रेम के अनेक भावों के साथ अन्तर की मार्मिक दशा का अभिव्यंजन बड़े ही कौशल के साथ हुआ है।

घनानन्द के प्रेम की धारा लौकिक (इश्क़मजाजी) चट्टानों से निकल कर अलौकिकता (इश्कहक़ीकी) के चौरस धरातल पर प्रवाहित हुई थी। दूसरे शब्दों में सुजान के प्रति इनके हृदय में जो प्रेम था, उल्लास था, और मिलन की जो उत्कृष्ट अनुभूति थी, उसकी वास्तविक परिणति राधा-कृष्ण के प्रेम में अपने सहज रूप में हुई। फलतः उनकी प्रेम-व्यंजना में सहजता है और उसके साथ ही हृदय पर चोट करने की एक प्रभविष्णुता भी। उनका पूर्ण विश्वास था कि प्रेम एक अलौकिक महासागर है, जिसमें राधा और कृष्ण एक-रस होकर निमग्न रहते हैं और उसकी एक लोल-तरंग ने मानव जगत तक पहुँच कर सब को पूर्ण प्रभावित कर रखा है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि क,
बिचार वापुरो हहरि बारहो तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही-हरि राधा जिन्हैं देखें सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरिलोक लोकनि-उमगि उफनायौ है।

सोई घनआनंद सुजान लगि हेत होत,
ऐसैं मथि-मन पै सरूप ठहरायौ है।[1]

इनकी प्रेम व्यंजना में फारसी काव्य-परम्परा के कवियों जैसी उछलकूद नहीं है, वरन् प्रेम की गम्भीरता और रसमग्नता की एक अपूर्व झलक है। इसमें अवगाहन करने वाले काव्य रसिक तादात्म्य की एक सच्ची अनुभूति से रसार्द्र हो जाते हैं। इनकी वाणी की मुख्य विशेषता अन्तर्वृत्तियों का निरूपण है। इसीलिए बाह्यार्थ निरूपण की प्रवृत्तियों का इनमें बहुत अभाव है। भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति में इनकी वाणी कितनी सूक्ष्ममयी और प्रेम-व्यंजना के स्वरूप की पहचानने में इनकी दृष्टि कितनी सजग थी, यह इनकी प्राप्त रचनाओं के अनुशीलन से सुस्पष्ट हो जाता है। वास्तव में इनकी प्रेम-व्यंजना की विलक्षणता यह है कि 'वहाँ रीझ सुजान सची पटरानी' के समक्ष विचारी बुद्धि दासी बनकर ही बच सकी। दूसरे शब्दों में हृदय के प्रेम के साम्राज्य में बुद्धि अधीन होकर ही रह सकती है। हृदयगत भावों को समझने और परखने की इनकी अन्तर्दृष्टि कितनी गहराई तक पहुँचती थी, इसे लक्ष्य करके प्रसिद्ध आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने एक-प्रसिद्ध मनस्तत्ववेत्ता का उल्लेख यों किया है—भावों या मनोविकारों के स्वरूप के लिए कवियों की वाणी का अनुशीलन जितना उपयोगी है, उतना मनोविज्ञानियों का निरूपण नहीं।[2]

प्रेम की पीर—'ब्रजनाथ' ने घनानन्द के काव्य की प्रशंसा करते हुए एक छन्द में लिखा है कि 'चाह के रंग में भीज्यों हियों' और बिछुरे मिलैं 'प्रीतम सांतिन मानैं।' निश्चय ही यदि इस कसौटी पर हम घनानन्द की स्नेह सिक्त वाणी का अनुशीलन करते हैं तो वास्तविकता स्वतः प्रकट हो जाती है। वे प्रेम की ना भूमियों की पहचान करने में बड़े ही निष्णात एवं पंडित थे। 'चाह' के रंग में भीग जाने पर अन्तर की ज्वाला अपनी कैसी झलक मारती है

---

१. घनआनन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)-सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ११६

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३३८, सं० २००३ का संस्करण

और उस समय जीवन और मृत्यु का कैसा संघर्ष चलता है, इन समस्त दशाओं का घनानन्द ने बड़ा सरस एवं हृदयग्राही चित्र खींचा है—

अन्तर उदेग-दाह आँखिन प्रवाह आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय-खोय आपही मैं चेटकि-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि वसत पै अनंदघन,
बिरह-विषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीवन मीच बिना बन्यो आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।[1]

वियोग में व्यथित प्राणों के लिए प्रियतम-मिलन की लालसा और उसका यही प्रेम सच्चा सहायक होता है। प्रेमिका प्रियतम के चले जाने पर उसके आने वाले मार्ग के समक्ष अपनी दृष्टि बिछाए रहती है और वह अपने हृदय-रूपी दीपक में लालसा की बत्तियों को प्रेमरूपी घृत में भिगो कर उन्हें जला देती है। पुनः बावली की भाँति-भावनारूपी थाल को उल्लासरूपी हाथों में पकड़ कर, प्रेम-मूर्ति की इस प्रकार वह आरती उतारती रहती है और इससे अपने वियोग का निवारण करती है। वस्तुतः अन्तर्दशा की गूढ़ता एवं गम्भीरता का जैसा निरूपण इसमें हुआ है वह बहुत से कवियों में ढूंढ़ने पर भी शीघ्र नहीं मिल सकता। उक्त भाव का छन्द यह है—

नेह सों मोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जुभरि अति, आरति।
रूप उज्यारे अजू मनमोहन सौंहति आवनि ओर निहारति।
रावरी-आरती बावरी लौं घन आँनद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलासञ्ञ के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति।[2]

तन्मयता की स्थिति—प्रेम-व्यथा का चित्र खींचते समय प्रेमियों की तन्मयता

१. घनआनन्द ग्रन्थावली—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १८६
२. वही, छं० सं० ५०१

का भी चित्र खींचा गया है। क्योंकि-प्रियतम के चले जाने पर प्रेमी जनों के लिए प्रिय की मधुरवाणी, उसका ध्यान और अंग-अंग को अपने रंग में डुबा देने वाला उसका रूप ही उसकी आँखों और मन के सामने रहता है। उसी रूप-रंग में वह डूबता-उतराता है। इसका एक भावपूर्ण चित्र कवि ने यों प्रस्तुत किया है—

जब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिबे की आन।
रस भीजे बैननि लुभाय के रचे हैं तहीं,
मधु-मकरन्द-सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनन्द गुननि कथा,
रसना रसीलो निसि बासर करत गान।
अंग-अंग मेरे उनही के संग रंग रँगे,
मन सिंघासन पै बिराजै तिनही को ध्यान।[1]

उपालम्भ—प्रेम-वैषम्य की अनुभूति का चित्रण करते समय प्रेमियों के उपालम्भ का कथन भी प्रेम-काव्यों में बराबर होता आया है। फारसी काव्य परम्परा में तो इसकी भरमार है। कविवर घनानन्द ने फारसी के प्रेम-काव्यों को भलीभाँति पढ़ा था, और उनमें व्यक्त प्रेमियों की निराशा और उनके उपालम्भ के अनेक प्रसंगों को समझा था। किन्तु उन्होंने भारतीय काव्य-परम्परा के सर्वथा अनुरूप और उसके मेल में रहने वाले भावों को दृष्टि में रख कर ही प्रेमियों के उपालम्भ और प्रिय की निष्ठुरता का सच्चा और हृदयग्राही चित्रण किया है। इस प्रसंग में एक ऐसी भावपूर्ण उक्ति को लें जिसमें कहा गया है कि प्रेमिका ने अपने हृदय रूपी पत्र में प्रेम का शुद्ध एवं पवित्र मंत्र लिखकर सुरक्षित रखा था, पर उस निष्ठुर प्रिय ने उसे पढ़ा नहीं और अज्ञानी की भाँति फाड़ डाला :—

---

१. घनआनन्द ग्रन्थावली—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १०१

पूरन प्रेम को मंत्र महापन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथान कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनंद जान, अजान लौं टूक कियो पर बाँचि न देख्यौ।[1]

फारसी काव्य-परंपरा में तो ऐसे प्रसंगों को कभी-कभी ऐसा अस्वाभाविक और भोड़ा बना दिया गया है कि प्रेम भाव का समस्त गाम्भीर्य इससे प्रायः नष्ट हो गया है। वहाँ तो पत्रवाहक की लाश ही खत के जवाब में आ जाती है—'कासिद की लाश आ गई खत के जवाब में।'

घनानन्द के काव्य में उपालम्भ विषयक इतनी उक्तियाँ भरी पड़ी हैं कि उन सबका एक साथ उल्लेख करना संभव नहीं है। हाँ, यह आवश्यक है कि उन उक्तियों में कभी सीधी सादी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, कहीं व्यंजना के कौशेय तंतुओं में भावों की मुक्तावलियाँ गूँथी गई हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसी ही उक्तियों को लक्ष्य करके लिखा है कि भावों का स्रोत जिस प्रकार टकराकर कहीं-कहीं वक्रोक्ति के छींटें फेंकता है उसी प्रकार कहीं-कहीं भाषा के स्निग्ध, सरल और चलते प्रवाह के रूप में भी प्रकट होता है।[2] भावों का स्रोत हृदय से टकरा कर किस प्रकार वक्रोक्ति के छींटें फेंकता है, तद्विषयक उक्ति लें—

कान्ह ! परे बहुतायन मैं अकिलैनि की बेदन जानौ कहा तुम।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै, हाय कछू उर आनौ कहा तुम।
आरतिवंत पपीहन कौं घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम।[3]

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ९१, प्र० सं०

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४०, २००३ का संस्करण

३. घनआनन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४०४

यों उर्दू और फारसी में भी उपालम्भ से सम्बद्ध भावों की व्यंजना देखने को मिली है, पर वहाँ भावों के साथ लिपटा हुआ ऐसा हृदय कदाचित कम मिलेगा। वहाँ के उपालम्भ का एक नमूना यों है।

तुम्हें गैरों से कब फुरसत हम अपने गम से कब खाली।
चलो अब हो चुका मिलना न तुम खाली न हम खाली।

प्रेम-काव्यों में भावों की गहराई में जो कलाकार उतर सका है, उसकी रचना में उतनी ही तन्मयता और प्रभावशालिता का गुण विद्यमान है। पर जो प्रेम-भाव को सामान्य व्यंग्य और विनोद के ही धरातल पर प्रतिष्ठित कर सके, उसमें हृदय संस्पर्शन का प्रभाव प्रायः क्षीण हो गया है।

प्रतीक्षा—वियोग में प्रियतम की प्रतीक्षा करने वाली प्रेमिकाओं की अन्तर्वृत्तियों के चित्रण में रीतिमुक्त कवियों को अतिशय सफलता मिली है। इनके ऐसे चित्रों में भाव परक रेखाओं का अंकन जिस सूक्ष्म रीति से और जिस कौशल से हुआ है, वह निश्चय ही परम्परा विहित चित्रों से भिन्न है और उसमें सौन्दर्य की अपूर्व दीप्ति है। यह दीप्ति वियोगिनी की आभ्यंतरिक चेतना को उभारने में पूर्ण सक्षम है। उदाहरण के लिए घनानन्द जी का एक प्रसिद्ध सवैया उद्धृत किया जा रहा है।

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरी बरुनीन रुमाँच ह्वै काँपति हैं।
घनानन्द जान सुधाधर मूरति चाहनि अंक में चाँपति हैं।
टकलाय रही पाल पाँवड़े कै सुचकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जबते तुम आवनि औध बदी तब ते अखियाँ मग माँपति हैं।[1]

इस छन्द में आँखों की चेष्टाओं का अंकन उस भाँति हुआ है कि लगता है प्रिय के मार्ग में वियोगिनी ने अपनी आँखें ही बिछा दी हों। दूर तक टकटकी बाँधकर वह नायिका प्रियतम को देख रही है और सोच रही है कि प्रियतम का

१. घनआनन्द ग्रंथावली (सु० हि०)—सं० आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छ० सं० ३४८

मार्ग कितना लम्बा है जिसे अभी तक वह तय नहीं कर सका। कवि ने आँखों के मग नापने में जैसी अनूठी अभिव्यंजन कला का परिचय दिया है, वह सब के लिए बहुत सुलभ नहीं। इसके साथ ही द्वितीय पंक्ति का भी चमत्कार विचारणीय है। कवि ने आँखों को उस प्रेमिका का रूप प्रदान किया है जो प्रियतम को अपनी छाती में कस कर दबा लेती है—प्रगाढ़ालिंगन का जो रूप हो सकता है उसका यह एक सूक्ष्म चित्र है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि वियोगिनी की आँखें चन्द्र तुल्य-सुजान की मूर्ति का स्मृति-चित्र अपनी चितवन रूपी अंक (छाती) में लगा कर लिपटा लेती है (कस कर छाती में दबा लेती है)।

एक अन्य छन्द में प्रतीक्षा-रत वियोगिनी की आँखें कानन की ओर सुबह से शाम तक प्रियतम को देखा करती हैं और सन्ध्या हो जाने पर सुबह तक प्रतीक्षा की उन घड़ियों को तारों के गिनने में बिता देती है, और अपने तारों को (पुतलियों को) हटाती नहीं, यदि ऐसे समय कहीं प्रियतम की झलक मिल गई तो ये आँखें आँसुओं की झड़ी लगा देती हैं। आँखों की इस मुद्रा और उनके क्रिया-कलाप का यह वास्तव में एक अतिशय भाव पूर्ण चित्र है—

भोर ते साँझ लौं कानन ओर निहारतावबरी नेकु न हारति।
साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।[1]

प्रियतम की चिर प्रतीक्षा के पश्चात् वियोगिनी का जीवन कितना निराशापूर्ण हो जाता है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। इस प्रकार के निराशापूर्ण जीवन का एक अतिशय मार्मिक चित्र घनानन्द के इस चित्र में मिलेगा। यहाँ विरहिणी अपनी निराशा का वर्णन किस दैन्य के साथ करती है, उसे देखें—

मग हेरत दीठि हिराय गई जब ते तुम आवनि औधि बदी।
बरसौ कितहूँ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इस सोच नदी।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छ० सं० ६

हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आसुनि मैन मदी।
कब आयहौ औसर जानि-सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।[1]

दैन्य भाव की व्यंजना से युक्त अन्तिम पंक्ति अतिशय मार्मिक और प्रभावशालिनी है। इसमें सबसे अधिक भाव-व्यंजक शब्दावली है बहीर (सेना का सामान) की भाँति उम्र का लद जाना (बीत या ढल जाना)।

स्मृति—यद्यपि लक्षण-ग्रन्थों में स्मृति एक संचारी भाव के रूप में उल्लिखित है, फिर भी सहृदय एवं संवेदनशील सच्चे भावुक कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा स्मृति के ऐसे-ऐसे चित्रों की उद्भावना की है जो हमारी प्रसुप्त चेतना को पूरे बल के साथ स्पंदित कर देती है। स्मृति की महत्ता और उसकी शक्तिमत्ता को मनस्तत्व वेत्ताओं ने भी स्वीकार किया है। स्मृति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक राबर्ट एस० वुडवर्थ का कथन है कि जब कोई कवि स्मृतिजन्य-आनन्द या कटुता का गान करता है तो उसका तात्पर्य यह है कि वह हमारे लिए मानवीय शक्ति का कथन कर रहा है, क्योंकि सम्पूर्णतः नहीं तो कम से कम किसी अंश तक हम अपने अतीत के साथ रहते हैं और उसका आनन्द प्राप्त करते हैं और बीते हुए समय के मित्रों को हम खोते नहीं, वे हमारी स्मृति में लौट आते हैं और जब हमारे वे पुराने मित्र प्रत्यक्षः हम से मिलते हैं तो उनकी वार्त्ता द्वारा अतीत का समस्त चित्र पुनः मूर्त्तमान हो जाता है :—

When the poet sings of the joys of memory–or some times of its terror–he is depicting for us a human ability which is truly remarkable. In some degree, though never perfectly, we are able to revive aur own past experiences, live them over again and enjoy them—or shudder at them–for the second or the hundredth time. The friends of earlier years are not wholly lost, for they 'come back' in memory; and when old friends come together in reality their conversation is sure to

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छ० सं० १६३

bring back the old days.[1]

घनानन्द की रचना में स्मृति भावों के जाने कितने चित्र भरे पड़े हैं जिन्हें प्राप्त करके सहृदय पाठक एक अनिर्वचनीय अनुभूति में तन्मय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए स्मृति का एक सजीव चित्र देखें—

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनंद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुध करति है।[२]

इस छंद में बताया गया है कि प्रियतम की सुधि उस विरहिणी को बेसुध कर देती है। दूसरे शब्दों में उसे रह रहकर प्रियतम की देखी हुई मुस्कुराहट उसकी मधुर वार्ता, उसकी गति, उसके वेणु बजाने की शैली आदि के संश्लिष्ट चित्र याद आते हैं और जब भाव-विभोर होकर उनका रसास्वादन करने लगती है, तो स्मृति उसे विस्मृति के जगत में पहुँचा देती है। और वेदना कसक एवं मधुर-टीस को जगा कर गायब हो जाती है।

सन्देश-प्रेषण—विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत संदेश प्रेषण के बड़े ही मार्मिक प्रसंग देखने को मिले हैं। इस संदेश प्रेषण में एक दैन्य, नम्रता और शालीनता के साथ करुण भाव भी जुड़ा हुआ है जिसे रस शास्त्रियों ने करुण रस से सर्वथा पृथक् बताया है। प्रिय मिलन की आशा से ही ऐसा करुण भाव उद्भूत होता

---

1. Psychology—Robert S. woodworth, Page 536, Twentieth edi.
२. घनआनन्द ग्रन्थावली (प्रकीर्णक)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४

है। यह करुण भाव विप्रलम्भ के चार अंगों—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण—में से एक अतिशय महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है।

संदेश-प्रेषण के प्रसंग संस्कृत काव्यों में बहुत हैं। वहाँ मेघदूत, पवन दूत, हंस दूत आदि कितने ही दूतों के सरस चित्र मिले हैं। हिन्दी काव्य परम्परा में भी संदेश प्रेषण की एक सुन्दर परिपाटी रही है, फारसी और उर्दू काव्य धारा में भी यह प्रसंग जीवित है। रीति काव्यों में सखी और विभिन्न जाति की दूतियों द्वारा संदेश-प्रेषण का कार्य निष्पादित हुआ है। किन्तु रीतिमुक्त काव्य धारा में परम्परा विहित रीतियों और रूढ़ियों को पूर्ववत् ग्रहण नहीं किया गया। वहाँ एक नूतन मार्ग-प्रवर्तन हुआ है। यों संस्कृत में कालिदास कृत मेघदूत का प्रसंग बहुचर्चित है और इसकी लोकप्रियता अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ऐसे प्रसंगों से रीतिमुक्त कवि अनभिज्ञ थे और उसकी मार्मिक अवतारणा वे नहीं कर सकते थे। वास्तव में ऐसे विषयों पर इन रीतिमुक्त कलाकारों ने अधिक नहीं लिखा, पर जो कुछ भी लिखा है, वह बेजोड़ एवं अप्रतिम है। इस कथन की पुष्टि के निमित्त घनानन्द का एक छन्द दिया जा रहा है—

पर काजहिं देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घन आनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहूँ लै बरसौ।[1]

इस छंद में विरहिणी बादलों से निवेदन करती हुई कह रही है—हे बादल, तुम दूसरे के लिए अपने शरीर को धारण करते हो, और तुम्हारा नाम भी दूसरों का उपकार करने वाला है। अतः तुम अपने नाम को सार्थक करो। तुम समुद्र के खारे जल को अमृत के समान मीठा बना देते हो और सब प्रकार की सज्जनता प्रदर्शित करते हो। चूंकि तुम जीवन (प्राण-पानी) देने वाले हो, इस कारण थोड़ी हमारी भी पीड़ा का अनुभव अपने हृदय में करो। और किसी

१. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३३८

समय उस विश्वासघाती सुजान के आँगन में मेरे खारे आँसुओं को ले जाकर बरसा दो। इसके अन्तिम चरण में भाव-व्यंजना का जो उत्कर्ष सन्निहित है वह 'मेघदूत में ढूंढ़ने से ही मिलेगा, इसे सहृदय पाठक-तुलना करके देख लें।' मेघदूत, की ही कोटि का पवनदूत विषयक-प्रसंग भी घनानन्द में मिला है, उसमें हृदय के दैन्य और करुण भाव के साथ भारतीय ललना के दिव्य आदर्श की एक सुन्दर झलक मिलती है—

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी,
तोसो और कौन, मन ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान,
घन आनंद निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन भारे अन्त मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै।
बिरह-बिथाहि भूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हाहा ! नेकु आनि दै।[1]

इसमें घनानन्द ने सीधी-सादी शब्दावली में विरहानुभूति की उत्कटता, प्रेम भाव की उदात्तता तथा विरही के हृदय की सरलता की अभिव्यक्ति ऐसे ढंग से की है, जिसमें अनावश्यक शब्दों की भरमार, विशेषणों की प्रचुरता और अलंकरण-पद्धति का सर्वथा अभाव है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इस छन्द में मृदंग की ध्वनि व्याप्त है। विशेषकर दूसरे चरण में।[2]

प्रकृति—रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रयास प्रायः नहीं किया। केवल द्विजदेव को छोड़कर अन्य जितने भी रीतिमुक्त कवि हैं उनमें प्रकृति के यथार्थ अनुराग और उसके बिम्बों के निरूपण की प्रवृत्ति प्रायः नहीं मिलती। इन रीतिमुक्त कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य का विधान अधिकतर वियोग शृङ्गार के आभोग में किया है, इस कारण प्रकृति के उन्मुक्त क्रिया-

---

१. घनआनंद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २५८
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास

कलापों एवं व्यापारों के मनोहारी दृश्यों का दर्शन यहाँ नहीं होता। यहाँ तो ऋतु-सुलभ-व्यापारों में वियोगी की मानसिक संवेदना का प्रतिबिम्ब बहुत स्पष्ट रूपेण लक्षित होता है।[1] रीतिमुक्त कवि की आभ्यंतरिकता प्रकृति पर इस प्रकार छाई हुई है कि यह नहीं लगता कि प्रकृति स्वतः स्पंदित है और उसमें अपनी गत्यात्मकता है, बल्कि प्रकृति वियोगी की अन्तर्दशा का चित्र जिस खूबी से प्रस्तुत करती है, उस खूबी से अपनी दशा का नहीं। वियोग में चाँदनी रात, बसन्त, दीपावली, होली, सन्ध्या, बन, चन्द्रमा सब जैसे काटने दौड़ते हैं। चाँदनी तो ऐसी प्रतीत होती है मानो वह प्रलयकालीन समुद्र हो और सबको डुबाकर ही कल लेगी। घनानन्द का तद्विषयक एक चित्र लीजिए—

फैलि परी धर अम्बर पूरि मरीचिनि बीचिनि-संग हिलोरति।
भौंर भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति।
क्यौं बचियै भजियै घनआनँद बैठि रहै घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै कै पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति।[2]

कभी वियोगिनी को प्रियतम के अभाव में रात सर्पिणी के समान प्रतीत होती है। ऐसी उद्भावना को देखकर सूर की प्रसिद्ध रचना 'पिया बिन सांपिनि कारी रात' का चित्र आँखों के सामने बरबस नाचने लगता है। यद्यपि ऐसे कथनों में वैचित्र्य और विशेष कौशल का रूप तो झलकता है, पर हृदय को स्पर्श करने वाली क्षमता प्रायः क्षीण हो गई है। अब व्यतिरेक और साङ्गरूपक के साँचे में ढली हुई उस सर्पिणी रात का चित्र लीजिए—

करुओ मधुर लागै, वाको विष अंग भएँ,
याहि देखे रसहू मैं कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही ते बढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है।

---

१. बूँदें न परति मेरे जान जान प्यारी ! तेरे बिरही को हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै—घनानन्द कबित्त, छं० सं० ५७

२. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४४

सुन्दर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासों कोटि गुनी ह्वै लहरि, सरसति है।
पापिनि डरारी भारी सांपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोंहि डाहनि डसति है।[1]

मिलनावस्था—वियोग की तुलना में घनानन्द ने मिलन के चित्रों की रचना अधिक नहीं की। हाँ, यह अवश्य है कि इन्होंने संयोग शृङ्गार के आभोग में नायिकाओं की मुद्रा-विधान एवं हावों के प्रभाव का बड़ा ही सरस वर्णन किया है। यों अनुभावों एवं हावों की सूक्ष्मता के निरूपण में बिहारी की कला की प्रशंसा की जाती है, पर घनानन्द ने हावों की जैसी मूर्त विधायिनी कल्पना की है, वह अन्यत्र सुलभ नहीं। इसके साथ ही नायिका के अपूर्व लावण्य, सहज-गति, उसकी भावपरक चेष्टाएँ, दीप्ति, सुकुमारता, आदि के चित्रों से इनका काव्य भरा पड़ा है। सब से पहले हम नायिका से अपूर्व लावण्य विषयक कुछ विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत करेंगे—

लावण्य—वस्तुतः घनानन्द की रूप-चेतना अतिशय सूक्ष्म तरल और मर्मभेदिनी है। कवि की यह रूप-चेतना बहुत कुछ छायावादी कवियों से मेल खाती हुई प्रतीत होती है। स्वयं जयशंकर प्रसाद तो इनकी सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति से काफी प्रभावित थे, यही कारण है कि आँसू और कामायनी जैसी कृतियों पर इनके सौन्दर्य-बोध का अमिट प्रभाव है।

रीति कवियों ने भी नायिकाओं के अंगों की दीप्ति, सुकुमारता और सौंदर्य का चित्रण किया है। पर वह बहुत कुछ बाह्यार्थ निरूपण पद्धति का है, उसमें स्वात्मवैशिष्ट्य निरूपण का प्रयास प्रायः नगण्य है। आभ्यंतरिकता के गुणों से सम्पृक्त ऐसे चित्र मन की एक विशिष्ट स्थिति के बोधक होने के साथ ही, भाव-तन्मयता के एक असाधारण धरातल का निर्माण भी करते हैं—जो पाठक-रीति कवियों के नख-शिख वर्णन की रूढ़ परिपाटी से ऊब गये हैं, उन्हें निश्चय ही इन रससिक्त सौन्दर्य के सूक्ष्म चित्रों से पर्याप्त संतोष मिलेगा। हम इस संदर्भ

---

१. घनआनंद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २६८

में उनकी रूप-चेतना की गहराई को स्पष्ट करने वाले कुछ चित्रों की चर्चा करेंगे। पहले निम्नलिखित छंद लीजिये—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद, भाव भरी,
लसति ललित लाल चख तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन दमक फैलि हियें मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरिमुरि जानि मैं।[1]

छंद का आशय—यह है कि लज्जा में लिपटी हुई गूढ़ भावों से भरी नायिका की चितवन उसकी लाल (अनुराग संवलित) आँखों में शोभा दे रही है और सुन्दर भाल के साथ ही मृदु मुस्कराहट से रस टपक पड़ रहा है। उसके दाँतों की दीप्ति छाती पर फैल कर मोती की माला की सृष्टि करती है। वह आनन्द की निधि है, और उसके मुड़ने में काम छटा का रूप स्वतः फूट पड़ता है। इसे पढ़ कर लगता है कि कवि ने सौन्दर्य के गत्यात्मक चित्र को रागात्मकता के सूक्ष्म रंगों से रंग कर सजीव कर दिया हो। ऐसा भाव परक बिम्बात्मक (Pictorial) विधान अन्यत्र ढूंढ़ने से भी जल्दी नहीं मिलेगा। यों मतिराम कवि के 'ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यौं-त्यौं खरी निखरै सी लुनाई' की चर्चा खूब की जाती है, पर इसकी तुलना में उसमें बहुत पूर्णता नहीं है।

अंगों के लावण्य की चर्चा संस्कृत साहित्य में भी खूब की गई है। वहाँ तो इस सत्य पर विश्वास किया गया है कि—

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा
प्रतिभातियदंगेषु तल्लावण्य मिहोच्यते।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १, प्र० सं०

अर्थात् मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी कांति की तरलता अंगों में लावण्य कही जाती है। इसे संस्कृत साहित्य में आचार्यों ने छाया या विच्छत्ति के रूप में निरूपित किया है।[1] निश्चय ही यही लावण्य घनानन्द की नायिका के अंगों में व्याप्त है तथा जिसकी सूक्ष्म अनुभूति अन्तर को गुदगुदा देती है। वस्तुतः ऐसे आन्तरिक-संस्पर्श से उनके समस्त चित्र सजीव हो उठे हैं। और ऐसे चित्र कई छन्दों में देखने को मिलते हैं। सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और मोती के भीतर की छाया जैसी तरलता का एक नमूना यों है—

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की, बरसा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।[2]

नायिका के अंग प्रत्यंग से कांति की ऐसी तरंग उठ रही है कि लगता है कि अभी पृथ्वी पर सौन्दर्य चू पड़ेगा। सौन्दर्य के पृथ्वी पर चू पड़ने की अभिव्यक्ति निस्संदेह बड़ी ही सूक्ष्म उद्‌भावना पर आश्रित है। वस्तुतः यहाँ कवि की सौंदर्यानुभूति इतनी सूक्ष्म हो गई है कि उसका चाक्षुष बिम्ब साधारणतया नहीं बन पाता।

गहरी माधुरी के साथ जब सौंदर्य की लहरी उठती है तो उस समय ऐसे अनुपम कांति का वर्णन करने में कवि अपने को पूर्ण असमर्थ पाता है, उस पर विचार करते नहीं बनता—

माधुरी गहर, उठै लहर-लुनाई जहाँ,
　　कहाँ लौं अनूप रूप पानिप बिचारियै।[3]

सौंदर्य की विलक्षण स्थिति की भावना कभी-कभी इस प्रेरणा से किया गया

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—बा० जयशंकर प्रसाद, पृ० १२४
२. घनानंद कवित्त,—सं० बिश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २
३. वही, छं० सं० २५९

है कि यह प्रतीत नहीं होता कि इसका कारण प्रिय का सौंदर्य है या प्रेमी का मन।[1] अपने एक छन्द में घनानन्द ने इस मर्म का उद्घाटन बड़ी ही सहृदयता के साथ किया है। कवि के चित्त रूपी चित्रकार ने प्रेमिका की अंग दीप्ति के साथ घुलने वाले प्रस्वेद के रंगों की सामग्री को ऐसी कुशलता से संचित किया और उससे अपने नेत्रों के प्रवाह में ऐसी मूर्ति निर्मित की कि उसकी विलक्षण विपरीतता समझ में नहीं आती। वह जान प्यारी से साश्चर्य पूछता है कि यह तुम्हारे सौंदर्य की करतूत है या मेरे चित्रकार चित्र की विलक्षणता है :—

अंग अंग-आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम रोम छबि हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यों प्रवाह रूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है आनन्दघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित चितेरे की।[2]

'प्रवाह रूपी नेत्रों पर प्रियतम का चित्रांकन कैसे सम्भव है और उस प्रवाह में उसके रंग कैसे बने रह सकते हैं, इस विलक्षणता को प्रेमी का मन ही समझता है, अन्य नहीं।'

वस्तुत: लावण्य या सौन्दर्य की अनुभूति को भारतीय रस सिद्धान्त के विवेचकों ने रसानुभूति का ही पर्याय माना है। इस तथ्य का विस्तार पूर्वक विवेचन करते हुए हिन्दी के मान्य आलोचक डॉ० नगेन्द्र ने कहा है—"भारतीय रससिद्धान्त में रसास्वाद के विवेचन के अन्तर्गत इन सभी विशेषताओं का अत्यन्त स्पष्ट एवं प्रामाणिक विवेचन किया गया है। अभिनव गुप्त के अनुसार स्थायी भावों की निर्विघ्न प्रतीति का नाम रस या सौन्दर्यानुभूति है।"[3]

---

१. घनानंद कवित्त, भूमिका भाग, पृ० ७, प्र० सं०
२. वही, छं० सं० २७७
३. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, पृ० २०४

कविवर घनानन्द ने नायिका के सौन्दर्य का निरूपण जिस प्रक्रिया से किया है और उसमें अपनी कलात्मक दृष्टि के साथ जिस गहराई का परिचय दिया है, वह प्रमाता के मानस में रसानुभूति को उद्‌बुद्ध करने में पूर्ण सक्षम है। एक छन्द में तो उन्होंने सौन्दर्य के उमड़ाव का अंकन बड़ी ही सफाई के साथ किया है। कवि का कथन है कि यह उमड़ाव नायिका के मुख पर नित्य नया-नया आभासित होता रहता है। निस्संदेह कवि ने रूप-चेतना की ऐसी सूक्ष्माभिव्यक्ति के द्वारा रस-संवेदना का एक असाधारण धरातल प्रस्तुत किया है। छन्द देखें—

रूप की उझलि आछे आनन पै नई-नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी आक धरैं प्यास-पीर सरसई है।
कैसें घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तो चकित औ थकित मति भई है।[1]

चेष्टा एवं मुद्रा विधान—संयोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत नायिका की चेष्टाओं एवं उसके मुद्रा विधान का वर्णन रीति काल में पर्याप्त हुआ है। स्वयं बिहारी ने उसके वर्णन में अपने अतिरिक्त कौशल का संकेत दिया है, पर उनमें घनानन्द जैसी भावों की रमणीयता और मादक प्रभाव का बहुत कुछ अभाव है। वास्तव में रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द ने मुद्रा निरूपण में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि का विनियोग किया गया है कि उसे देख कर दृष्टि चौंधिया जाती है। इस कथन की पुष्टि के लिए उनका एक छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है—

निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी, छबि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे ढरिगो हिय ढोरनि बाहन की।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २३८

चट दै कटि पै बढ़ि प्रान गये गति, सों मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहि कराहनि की।[1]

बिहारी आदि रीतिबद्ध कवियों का मुद्रा विधान प्रायः स्थूल है और उसमें चामत्कारिक दृष्टि का आग्रह अधिक है, पर घनानन्द जैसे रीतिमुक्त कवियों में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने की एक जबर्दस्त क्षमता है। उपर्युक्त छन्द में भी कवि ने स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने का श्लाघ्य प्रयास किया है। छन्द का आशय यह है कि प्रियतम ने एक बार नायिका को मुड़कर देखा और देख कर उसके मुड़ने के साथ ही नायिका की आँखें भी उस प्रिय के साथ लग गईं। और आँखों के लगने के साथ ही नायिका का मन उसकी ओर इस प्रकार ढल गया जैसे पानी नाली में ढह जाता है। इधर नायक का मन नायिका की मति में डूबने के भय से कटि में बल देकर निकल गया। इससे स्पष्ट है कि किस प्रकार स्थूल नेत्र-सूक्ष्म मन तक रूप की अनुभूति या भावों को पहुँचाने में सहायक होते हैं।

मुद्रा विधान की यह चातुरी कभी-कभी रति रंग के प्रसंग में देखने को मिली है। यों सुरतान्त वर्णन में अन्य रीति कवियों ने प्रायः शिष्टता का ध्यान कम रखा है, पर घनानन्द के ऐसे शृङ्गारिक चित्रों में भी एक सहजता के साथ शालीनता का व्यापार अधिक हृदयग्राही और मोहक है। सुरतान्त की मुद्रा का उन्होंने कैसा भव्य, रमणीय और चित्रात्मक रूप इस छंद में प्रस्तुत किया है—

केलि की कला निधान सुन्दरि सुजान महा,
आनन समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज भीजिए चितौनि।

---

1. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ६६, प्र० सं०

कविवर घनानन्द ने नायिका के सौन्दर्य का निरूपण जिस प्रक्रिया से किया है और उसमें अपनी कलात्मक दृष्टि के साथ जिस गहराई का परिचय दिया है, वह प्रमाता के मानस में रसानुभूति को उद्बुद्ध करने में पूर्ण सक्षम है। एक छन्द में तो उन्होंने सौन्दर्य के उमड़ाव का अंकन बड़ी ही सफाई के साथ किया है। कवि का कथन है कि यह उमड़ाव नायिका के मुख पर नित्य नया-नया आभासित होता रहता है। निस्संदेह कवि ने रूप-चेतना की ऐसी सूक्ष्माभिव्यक्ति के द्वारा रस-संवेदना का एक असाधारण धरातल प्रस्तुत किया है। छन्द देखें—

रूप की उझलि आछे आनन पै नई-नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी आक धरैं प्यास-पीर सरसई है।
कैसें घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तो चकित औ थकित मति भई है।[1]

चेष्टा एवं मुद्रा विधान—संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत नायिका की चेष्टाओं एवं उसके मुद्रा विधान का वर्णन रीति काल में पर्याप्त हुआ है। स्वयं बिहारी ने उसके वर्णन में अपने अतिरिक्त कौशल का संकेत दिया है, पर उनमें घनानन्द जैसी भावों की रमणीयता और मादक प्रभाव का बहुत कुछ अभाव है। वास्तव में रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द ने मुद्रा निरूपण में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि का विनियोग किया गया है कि उसे देख कर दृष्टि चौंधिया जाती है। इस कथन की पुष्टि के लिए उनका एक छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है—

निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी, छबि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे ढरिगो हिय ढोरनि बाहन की।

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २३८

चट दै कटि पै बढ़ि प्रान गये गति, सों मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहि कराहनि की।[1]

बिहारी आदि रीतिबद्ध कवियों का मुद्रा विधान प्रायः स्थूल है और उसमें चामत्कारिक दृष्टि का आग्रह अधिक है, पर घनानन्द जैसे रीतिमुक्त कवियों में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने की एक जबर्दस्त क्षमता है। उपर्युक्त छन्द में भी कवि ने स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने का श्लाध्य प्रयास किया है। छन्द का आशय यह है कि प्रियतम ने एक बार नायिका को मुड़कर देखा और देख कर उसके मुड़ने के साथ ही नायिका की आँखें भी उस प्रिय के साथ लग गईं। और आँखों के लगने के साथ ही नायिका का मन उसकी ओर इस प्रकार ढल गया जैसे पानी नाली में ढह जाता है। इधर नायक का मन नायिका की मति में डूबने के भय से कटि में बल देकर निकल गया। इससे स्पष्ट है कि किस प्रकार स्थूल नेत्र-सूक्ष्म मन तक रूप की अनुभूति या भावों को पहुँचाने में सहायक होते हैं।

मुद्रा विधान की यह चातुरी कभी-कभी रति रंग के प्रसंग में देखने को मिली है। यों सुरतान्त वर्णन में अन्य रीति कवियों ने प्रायः शिष्टता का ध्यान कम रखा है, पर घनानन्द के ऐसे शृङ्गारिक चित्रों में भी एक सहजता के साथ शालीनता का व्यापार अधिक हृदयग्राही और मोहक है। सुरतान्त की मुद्रा का उन्होंने कैसा भव्य, रमणीय और चित्रात्मक रूप इस छंद में प्रस्तुत किया है—

केलि की कला निधान सुन्दरि सुजान महा,
आनन समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज भीजिए चितौनि।

1. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ६६, प्र० सं०

पिय अंग संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति तरंग रस बिबस उर मिलौनि।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम
स्वेदहि झलक भरि-ललक सिथिल हौनि।[१]

अलकों का झूलना, आधी पलकों का खुलना, शरीर पर स्वेदकण का झलकना और ललक के साथ रति-क्रीड़ा में संलग्न हो कर शिथिल पड़ना आदि उसकी शिथिल एवं आलस्य वलित चेष्टा का एक अतिशय मुग्धकारी चित्र है।

सुकुमारता एवं लज्जा—घनानन्द ने सुजान के अंग प्रत्यंग के वर्णन में अधिक रुचि नहीं ली। हाँ, जहाँ-तहाँ सुजान के नेत्र, दाँत, भौंहे, शिर, केश, भाल, उरोज, कटि, अधर, पीठ, पिंडली, महावर, मुख, एड़ी, तलवा आदि का चित्रण किया अवश्य है, पर कवि ने सौन्दर्य के सूक्ष्म रूपों का कलात्मक विधान नायिका की सुकुमारता और लज्जा निरूपण के प्रसंग में अधिक किया है। कवि ने एक स्थल पर नायिका की सुकुमारता का अंकन यों किया है—

चातुर ह्वै रसआतुर होहु न बात सयान की जात क्यों चके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद, कोंवरे अंग सुजान वधूके।
चोली-चुनावट-चीन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतूके।[२]

नायिका इतनी कोमल और सुकुमार है कि चोली के बेल-बूटे उसके शरीर पर उपट आते हैं और इस प्रकार उसे अतिशय कष्ट होता है। यों इनके ऐसे छन्दों पर फारसी काव्य-परम्परा का भारी प्रभाव है, पर कवि ने उसे भारतीय काव्य शैली और परम्परा के मेल में रखने का अच्छा प्रयास किया है। सुकुमारता के साथ ही लज्जा का मादक प्रभाव भी स्थल-स्थल पर देखने को मिला है।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २२५
२. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—छं० सं० १४६

लज्जा वास्तव में भारतीय रमणी का प्रकृत भूषण है और इसे श्री की बहिन कहा गया है। घनानन्द ने तो 'लाजनिलपेटी भेद-भाय भरी चितवनि' का रमणीय चित्र अपने कई छन्दों में खींचा है। यहाँ नमूने के लिए एक छन्द दिया जा रहा—

घूंघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सुहोत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे भरी छबि छाजनि।
देखत देखत दीस परै नहि यौं बरसै घनआनंद लाजनि।[1]

छन्द का भाव यह है कि जब नायिका अपने घूंघट को काढ़ कर लज्जा को समेटती है तो इस क्रिया से वह लज्जा को भी लज्जित कर देती है। उसे देख कर लज्जा भी अपने आप में लज्जित हो जाती है। यह उसकी लज्जा का एक भावपूर्ण चित्र है।

कृष्ण लीला के कुछ सरस प्रसंग—यद्यपि घनानन्द ने मुक्त शैली में ही अपनी श्रृङ्गारिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, पर कृष्ण-कथा के कुछ रोचक और सरस प्रसंगों को लेकर यत्र-तत्र प्रबन्धात्मक पटुता का भी संकेत दिया है। विप्रलम्भ के आभोग में विरह-लीला और संयोग के अन्तर्गत होली और दान लीला के प्रसंग निश्चय ही बहुत ही सुन्दर हैं। यहाँ हम घनानन्द की दान-लीला विषयक रचनाओं के कतिपय वैशिष्ट्य पर विचार करेंगे।

दानलीला—दानलीला में व्यंग्य गर्भित उक्तियों के साथ ही गोपियों और कृष्ण के सम्वाद की सुष्ठु योजना का दर्शन होता है। कृष्ण की शरारत और छेड़छाड़ के साथ ही गोपियों की खीझ और उनके अमर्ष भाव अधिक व्यंजक और मर्मभेदी बन गये हैं। हम इस प्रसंग के कुछ छन्दों के द्वारा घनानन्द के उक्ति चातुर्य को यथासंभव स्पष्ट करने का यत्न करेंगे। दानलीला का आरम्भ श्रीकृष्ण की शरारत से होता है। वे गोपों की मण्डली बाँधे हुए गोपियों के मार्ग में आ पहुँचते हैं और उन्हें घेर लेते हैं। गोपियों और कृष्ण के साथ ही उनके अन्य

---

१. घनआनंद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १७४

पिय अंग संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति तरंग रस बिबस उर मिलौनि।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम
स्वेदहि झलक भरि-ललक सिथिल हौनि।[1]

अलकों का झूलना, आधी पलकों का खुलना, शरीर पर स्वेदकण का झलकना और ललक के साथ रति-क्रीड़ा में संलग्न हो कर शिथिल पड़ना आदि उसकी शिथिल एवं आलस्य वलित चेष्टा का एक अतिशय मुग्धकारी चित्र है।

सुकुमारता एवं लज्जा—घनानन्द ने सुजान के अंग प्रत्यंग के वर्णन में अधिक रुचि नहीं ली। हाँ, जहाँ-तहाँ सुजान के नेत्र, दाँत, भौंहे, शिर, केश, भाल, उरोज, कटि, अधर, पीठ, पिंडली, महावर, मुख, एड़ी, तलवा आदि का चित्रण किया अवश्य है, पर कवि ने सौन्दर्य के सूक्ष्म रूपों का कलात्मक विधान नायिका की सुकुमारता और लज्जा निरूपण के प्रसंग में अधिक किया है। कवि ने एक स्थल पर नायिका की सुकुमारता का अंकन यों किया है—

चातुर ह्वै रसआतुर होहु न बात सयान की जात क्यों चके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद, कोंबरे अंग सुजान बधूके।
चोली-चुनावट-चीन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतूके।[2]

नायिका इतनी कोमल और सुकुमार है कि चोली के बेल-बूटे उसके शरीर पर उपट आते हैं और इस प्रकार उसे अतिशय कष्ट होता है। यों इनके ऐसे छन्दों पर फारसी काव्य-परम्परा का भारी प्रभाव है, पर कवि ने उसे भारतीय काव्य शैली और परम्परा के मेल में रखने का अच्छा प्रयास किया है। सुकुमारता के साथ ही लज्जा का मादक प्रभाव भी स्थल-स्थल पर देखने को मिला है।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २२५
२. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—छं० सं० १४६

लज्जा वास्तव में भारतीय रमणी का प्रकृत भूषण है और इसे श्री की बहिन कहा गया है। घनानन्द ने तो 'लाजनिलपेटी भेद-भाय भरी चितवनि' का रमणीय चित्र अपने कई छन्दों में खींचा है। यहाँ नमूने के लिए एक छन्द दिया जा रहा—

घूंघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सुहोत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे भरी छबि छाजनि।
देखत देखत दीस परै नहि यौं बरसै घनआनँद लाजनि।[1]

छन्द का भाव यह है कि जब नायिका अपने घूंघट को काढ़ कर लज्जा को समेटती है तो इस क्रिया से वह लज्जा को भी लज्जित कर देती है। उसे देख कर लज्जा भी अपने आप में लज्जित हो जाती है। यह उसकी लज्जा का एक भावपूर्ण चित्र है।

कृष्ण लीला के कुछ सरस प्रसंग—यद्यपि घनानन्द ने मुक्त शैली में ही अपनी शृङ्गारिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, पर कृष्ण-कथा के कुछ रोचक और सरस प्रसंगों को लेकर यत्र-तत्र प्रबन्धात्मक पटुता का भी संकेत दिया है। विप्रलम्भ के आभोग में विरह-लीला और संयोग के अन्तर्गत होली और दान लीला के प्रसंग निश्चय ही बहुत ही सुन्दर हैं। यहाँ हम घनानन्द की दान-लीला विषयक रचनाओं के कतिपय वैशिष्ट्य पर विचार करेंगे।

दानलीला—दानलीला में व्यंग्य गर्भित उक्तियों के साथ ही गोपियों और कृष्ण के सम्वाद की सुष्ठु योजना का दर्शन होता है। कृष्ण की शरारत और छेड़छाड़ के साथ ही गोपियों की खीझ और उनके अमर्ष भाव अधिक व्यंजक और मर्मभेदी बन गये हैं। हम इस प्रसंग के कुछ छन्दों के द्वारा घनानन्द के उक्ति चातुर्य को यथासंभव स्पष्ट करने का यत्न करेंगे। दानलीला का आरम्भ श्रीकृष्ण की शरारत से होता है। वे गोपों की मण्डली बाँधे हुए गोपियों के मार्ग में आ पहुँचते हैं और उन्हें घेर लेते हैं। गोपियों और कृष्ण के साथ ही उनके अन्य

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १७४

मित्रों से विवाद छिड़ जाता है। गोपियाँ इस प्रकार मार्ग घेरने पर नाराज हो जाती हैं और उन्हें फटकारती हुई कहती हैं—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन तए हौ।
लाजअँचै बिन काज खगौ तिनहीं सों पगौ जिन रंग-रए हौ।
ऐंड़ सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ।[1]

भाव यह है कि तुम अड़ैल होकर नित्य हमारा मार्ग रोका करते हो और लाठी लेकर अपने नेत्रों को नचाया करते हो। और तुम तो अपनी लाज को पीकर बेशर्म हो गए हो और बेकाज अड़ते हो। तुम वहीं जाओ और उसी से लगो जिसके प्रेम में अनुरक्त हो। अभी तुम्हारी सब ऐंड़ निकल जाएगी, तुम यहाँ क्यों घेरे हुए हो ?' इसे सुनकर श्रीकृष्ण ने गोपियों को बड़ा तीखा और करारा उत्तर दिया—

हैं उनए सु नए न कछू, उघटै कत ऐंड़ अमैड़ अमानो।
बैन बड़े-बड़े नैनन के बल बोलति क्यों है इती इतरानी।
दान दियैं बिन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगैं अछूती गई सु गई घनआनँद आज भई मनमानी।[2]

उनके उत्तर का सारांश यह है—यदि तुम दूसरे की गली में भूली-भटकी चली आई हो तो बिना दान दिए जाने नहीं पाओगी। पहले तो तुम बिना कर दिए चली गई, लेकिन आज तो हमारी मनचाही बात पूरी हो गई, तुमसे कर लेकर ही छोड़ूँगा। श्रीकृष्ण के ऐसे उत्तर को सुनकर गोपियाँ और अधिक चिढ़ जाती हैं और अपनी नाराजगी यों प्रकट करती हैं—

जीभ सँभारि न बोलत हौ, मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेरें।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरें।

---

१. घनानंद कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४०२
२. वही, छं० सं० ४०३

खाय कहा फल माय जने, जिय देखौ विचारि पिता तन तेरें।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौं टेरें।[1]

वस्तुतः व्यंग्य गर्भित इस उक्ति में भावोत्कर्ष का सच्चा रूप झलक उठा है। गोपियों का यह वाक्य 'न जाने कौन सा फल खाकर माता ने तुम ऐसा पुत्र (व्यंग्य से शरारती लड़का), पैदा किया है, अपने आप में बड़ा ही तीखा और मर्मभेदी है। खीझ की यहाँ पराकाष्ठा हो गई। इसके पश्चात् कमल और कनेर में बड़ा फर्क है कह कर मानो यह भी व्यंजित कर दिया कि तुम हमसे क्या बहस करते हो, छोटे मुँह बड़ी बात शोभा नहीं देती, पुनः हमारी तुम्हारी तुलना ही क्या। इस प्रकार दानलीला में प्रेम व्यंजना के बड़े अच्छे-अच्छे चित्र मिले हैं। इसमें अमर्ष, विनोद प्रहसन, खीझ के तह में प्रेम की एक अनाविल धारा प्रवाहित है, जिसमें न केवल गोपियों का ही मानस अवगाहन करता रहता है, अपितु सहृदय पाठकों के लिए भी वह सहज संवेद्य है। दानलीला के साथ श्रीकृष्ण के बन से गाय चराकर लौटते समय की शोभा का वर्णन भी कम उत्तम नहीं है। श्रीकृष्ण-कथा से सम्बद्ध यत्र-तत्र वेणु-वादन का प्रसंग अधिक ललित एवं अनूठा है।

होली के अन्तर्गत आमोद एवं विनोद के प्रसंग—कृष्णलीला के विनोद एवं आमोद के प्रसंगों में होली का वर्णन अतिशय महत्त्व रखता है। प्रेम क्रीड़ा के क्षेत्र में होली के हुड़दंग का कथन रीति साहित्य के देव, बिहारी, पद्माकर आदि कवियों ने खूब किया है। इस प्रसंग के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की चपलता, छेड़-छाड़, छीना झपटी, उछल-कूद के नाना प्रकार के चित्र देखने को मिले हैं। घनानन्द ने भी ऐसे सरस प्रसंगों को लिया है, पर प्रेम का अतिशय गाढ़ा रंग भर कर उन्हें अति प्रभावशाली बना दिया है। इस सम्बन्ध में उनका होली विषयक यह छन्द लें—

राधा नबेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजें अति सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस प्यास भरी अँखियान सो जोहै।

---

१. घनानंद कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४०६

दीठि मिलें मुरि पीठि दई हिय हेत की बात सकै कहि कोहै।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजिन पै रँग रीझनि मोहै।[1]

छन्द का भाव यह है कि राधा अपनी सखियों के समाज में होली का साज सजाकर बैठी है। राधा के इस साज-समाज को श्रीकृष्ण दूर से ही आनन्द की पिपासा से युक्त आँखों से देख रहे हैं। जब राधा की आँखों से उनकी आँखों का मेल हो जाता है तो राधा जान बूझ कर श्रीकृष्ण की ओर से अपनी दृष्टि हटा कर अपनी पीठ घुमा लेती है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसने अपने प्रेम को कम कर दिया। भला, उसके हृदय के प्रेम की बात को कौन समझ सकता है! लगता है श्रीकृष्ण ने संकेतों से हो आनन्द के बादलों की ऐसी वृष्टि की कि उससे आर्द्र होकर वह आनन्द की इस रीझनि (तन्मयता) से मोहित हो गई। अब कुछ चपलता और विनोद के प्रसंग को भी देखें—

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सों।
बायें पानि घूँघट की गहनि चहनि ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सों।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सों।
मीड़िबे के लेखें कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी, हाथ रह्यौ सकुचि सखान सों।[2]

नव यौवना गौरांगी श्रीकृष्ण को गुलाल की मुट्ठी भर कर मारने के लिए सोल्लास चली। वह बाएँ हाथ से अपने घूँघट को पकड़े हुए थी और छिपकर तीखे नेत्रों के बाण से चोट भी कर रही थी। वह करोड़ों बिजलियों की शोभा को क्षीण करने वाली अवसर (दाँव) पाकर विजयिनी बन बैठी (उसके आगे श्रीकृष्ण की कुछ न चली) और आकर अपनी सखियों के समाज में मिल गई।

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३७४
२. घनआनँद ग्रन्थावली, (प्रकीर्णक), छं० सं० १९

अब बेचारे श्रीकृष्ण को उसके कपोलों को मींजने की जगह हाथ मींजना ही हाथ लगा (पछताना पड़ा) और वह गौरांगी इनकी पकड़ में न आ सकी। फलतः उन्हें मित्रों की मंडली में लज्जित होना पड़ा।

(घ) काव्य शिल्प

काव्य कला विषयक दृष्टिकोण—केशव और बिहारी की भांति काव्य के बहिरंग का पोषण घनानन्द को प्रिय न था। इसीलिए काव्य में चमत्कार को महत्व देने वाले इन कवियों को लक्ष्य करके ही घनानन्द ने कहा था 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत'। काव्य विषयक इनका दृष्टिकोण कितना स्पष्ट, उदात्त और सुग्राह्य है, यह इनकी रचना से ही प्रकट है। वस्तुतः इन्होंने वाणी (उक्ति) में ही काव्य के समस्त स्वारस्य को स्वीकार किया है और उस वाणी में अन्तर्हित सौन्दर्य राशि को सहृदय ही परख सकता है, उसकी चारुता का सही मूल्याङ्कन वही कर सकता है। इसे भी अपने इस छन्द में संकेतित किया है—

उर-भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सो सुलसै हुलसै रस रूप बनी।
रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनानन्द बूझनि अंक बसैं बिलसै रिझवार सुजान धनी।[1]

इसकी व्याख्या करते हुए घनानन्द के मर्मी आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं—इनकी कविता हृदय के भवन में मौन का घूँघट डाले अपने को छिपाये बैठी है। रही संभार की बात! सो सारे शास्त्रीय संभार इसमें हैं—

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

पदार्थ हैं, पर कोमल चुने हुए मंजुल। उसमें पद अर्थात् शब्द ही नहीं हैं, अर्थ भी हैं। वाक्य, लक्ष्य, व्यंग्य एक से एक मृदु, एक से एक मंजु। कोई कहे कि इसमें अवर अंश वाच्यार्थ-मात्र विशिष्ट अलंकार न हों सो बात भी नहीं है। इसमें अलंकार भी हैं, गहने भी हैं, पर वे भूषण, रत्न जटित हैं, चम-चमानेवाले हैं—दीप्ति करने वाले हैं। रत्न या मणि है क्या ?—रस-अलंकार की सभी योजना रस की दीप्ति के लिए है, केवल शरीर पर लदाव के लिए नहीं। यह वाणी या कविता यह बनी या दुल्हन रसना सखी के साथ जाती है। रसना सखी के संग जीभ के संग नहीं, रस की ओर ले जाने वाली रसना-रसाश्रय हृदय की शय्या पर, सुज्ज शय्या पर सहृदयता की सजी सेज पर उसे पहुँचाती है। इस कविता दुल्हन का रसिक (बना, धनी-स्वामी) कोई साधारण व्यक्ति कैसे हो सकता है वह सुजान है, प्रवीण है, साहित्य के विधि-विधानों से अभिज्ञ है। वही इस पर रीझता है, इसकी सूक्ष्म भाव भंगिमा को समझता है। बूझनि-प्रतीति रस प्रतीति-की गोद में काव्य प्रतीति के अंक में उसे लेकर विलसता है। घनानन्द की रचना का सौन्दर्य आवृत है, वह शब्दों द्वारा वाच्य नहीं है। हृदय ही—सहृदय ही उसके मर्म को समझ सकता है।[1]

घनानन्द के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने अपने एक छन्द में बताया है कि 'जग की कविताई के धोखें रहें, ह्यां प्रबीनन की मति जाति जकी' निश्चय ही इनकी वाणी में कुछ ऐसी विशेषता अवश्य है जिसमें प्रवीन की भी मति जकी सी (ठगी सी) रह जाती है—शीघ्र उसके मर्म को समझ नहीं पाती। ऐसा क्यों ? कारण स्पष्ट है जहाँ मौन के घूंघट में वाणी अपने को छिपाए हो—रचना का स्तर वाच्यार्थ से ऊपर निकल गया हो, उक्तियाँ व्यंग्य और लक्ष्य के शिखर पर विराजती हों वहाँ सामान्य पाठक बिना इनके (लक्षणा, एवं व्यंजना) ज्ञान के घनानन्द के काव्य सौन्दर्य का सही रूप कैसे देख सकता है ? इनके काव्य स्वरूप को व्यक्त करते हुए प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने एक स्थल पर और बताया है कि स्वांति के घनआनन्द के बरसने पर छन्द बन्ध, रीति और सूक्ति रूपी शुक्ता (सीपी) में रहने वाले सभी वर्ण (अक्षर) मुक्ता जैसे चमक उठे और उसमें हृदय के संयोग से अर्थ की विशिष्ट प्रभा उत्पन्न हो गई।

---

१. घनानन्द और स्वच्छंद काव्य धारा की भूमिका से, पृ० ८-९

प्रगटे सुधन सुबरन स्वाति जल जिते ।
बसे छन्द बंद रीति सुकति अधार है ।
सुन्दर विमल बहु अरथ-निधान देखो,
अचिरज नेह भरे झलकै अपार है ।[1]

इन्हीं मुक्ता लड़ियों को सुढार बताया गया है और सिफारिश की गई है कि इन्हें चित्त रूपी डोरे में गूंथकर पहन लो, क्योंकि ये बड़े यत्न के साथ प्राप्त की गई हैं । इन कथनों से स्पष्ट है कि घनानन्द का काव्य विषयक दृष्टिकोण अन्य रीति एवं परम्परा के प्रतिपोषक कवियों से सर्वथा भिन्न था । वे काव्य की सहजता पर अनुभूति संवलित रचना पर अधिक बल देते थे और भाव प्रेरित वचन वक्रता और वाणी की भंगिमा के महत्व को स्वीकार करते थे । हम उनके काव्य शिल्पगत वैशिष्ट्य का निरूपण उनके काव्य में इंगित और प्रशस्तिकार द्वारा अभिहित कतिपय उपादानों के आधार पर करने का प्रयत्न करेंगे ।

वचन-भंगिमा—काव्य में वचन भंगिमा या उक्ति की वक्रता की श्लाघा काव्य शास्त्रियों एवं काव्य पारखियों ने स्थान-स्थान पर की है । वस्तुतः जो वक्रता भाव प्रेरित होती है और हृदयानुभूति को लेकर चलती है वही अधिक प्रभावशालिनी और रसमग्नता का एक विशाल धरातल प्रस्तुत करती है । पर केवल चमत्कार का विधान करने वाले या सूक्तियों की प्रदर्शनी लगाने वाले कवि अपनी वाणी में स्थायी प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाते इसलिए भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण ग्रन्थ में वक्रोक्ति से साथ रसोक्ति के सामंजस्य या योग पर पूर्ण बल दिया है ।[2]

अभिनव गुप्त ने वैदग्ध भंगी भणिति में शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता की व्याप्ति लोकोतीर्ण रूप में मानी है ।[3] यही शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता काव्य में एक विशिष्ट कांति एवं दीप्ति को उत्पन्न करती है । दूसरे

१. घनानन्द कवित्त—सं० आ० वि० प्र० मि०, छं० सं० ४, पृ० ३३२
२. वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मय—सरस्वती कंठाभरण, भोज (५-८)
३. शब्दस्यहिवक्रता अभिधेयस्य चवक्रता लोकोत्तीर्ण न रूपेणवस्थानम लोचन, २०८

शब्दों में यह वक्रता रम्यछायान्तर स्पर्शी कही गई है। वस्तुतः सूक्ति के चमत्कार से काव्य को विरत करके कुन्तल ने अपने वक्रोक्ति सिद्धान्त के अन्तर्गत सरस उक्ति वैचित्र्य और वचन भंगिमा के महत्व को प्रतिपादित किया है इस दृष्टि से समस्त रीति काव्य परम्परा में घनानन्द ही एक कवि मिलते है जिनकी रचना में भंगिमा का अपूर्व चमत्कार देखने को मिलता है। यह चमत्कार अन्तरस्पर्शी और हृदय को झकझोर देने वाला है और उसे सहृदय वर्ग ही समझ सकता है, सामान्य व्यक्तियों के लिए वह अनधिगम्य है। घनानन्द ने क्रोचे की भाँति केवल अभिव्यंजन (Expression) पर ही बल नहीं दिया, अपितु हृदय की संवेदना और अनुभूति समन्वित पद्धति को काव्य की प्रकृत रमणीयता का आधार माना है। बिलायती मत के समर्थक भले ही क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की दाद दें, परन्तु है वह चमत्कारबाद का ही अन्य रूप, उसमें कुन्तक की वक्रोक्ति की रमणीयता की झलक प्रायः नहीं मिलती। यों वक्रोक्ति या वचन-भंगिमा का सौरस्य हिन्दी के शृङ्गारिक कवियों में बिहारी और घनानन्द दोनों में मौजूद है, पर बिहारी की तुलना में घनानन्द का बक्रोक्ति विधान अनूठा और अप्रतिम है।

घनानन्द की अनुभूति में ऐसी भंगिमा और तड़पन है जिसके कारण इनकी भाषा में भी भंगिमा, वक्रता और बाँकपन स्वभावतया आ गया है। इनकी वक्रता में हृदय पक्ष सर्वोपरि है और रीझि ही काव्य क्षेत्र की पटरानी है। बुद्धि (कल्पना) तो उसकी दासी है—कल्पना या भंगिमा का प्रयोग भाव प्रेरित है। यही, नहीं घनानन्द के अनुसार वाणी तो सूक्ष्म श्वासों के सूतों से बुना हुआ पवन पट है। अदृश्य वितान है। जो प्रेम के रंग में रंजित होकर अपना रूप धारण करता है, अर्थात् अरूप वाणी ही प्रेम या भाव की प्रेरणा से चित्रमय बन जाती है।[1]

सबद सरूप वहै जानन सुजान चहै,
अचिरज यहै और होत सुरलाग मैं।
× × ×
सूछम उसास गुन बुन्यो ताहि जानै कौन,
पौन पट रँग्यो पेखियत रंग-राग मैं।[2]

---

१. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४४०
२. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—छं० सं० ४४२

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार रीति युग के लक्ष्य काव्य में वक्रता का चरम विकास घनानन्द के कवित्तों में मिलता है। उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में ही वक्रता की प्रतिष्ठा है।[1] अब इसमें किंचित संदेह नहीं रह जाता कि घनानन्द के काव्य में वचन-भंगिमा और वक्रोक्तियों का अक्षय कोष है, और उन्होंने अपनी अनेक अन्तर्वृत्तियों को जिस वक्र मार्ग से ले जाने का प्रयास किया, उस मार्ग पर चलने का पुराने कवियों को तो अभ्यास था ही नहीं, नई भाव भंगिमा का प्रदर्शन करने वाले हिन्दी के आधुनिक रोमांटिक कवियों में भी यह गुण लक्षित नहीं होता। अतः रीति युग के प्रकृत रोमांटिक कवि घनानन्द की वाणी अपनी मौलिकता एवं प्रभविष्णुता के कारण सहज ही पृथक् है, और किसी दूसरे की वाणी में उसे मिलाया नहीं जा सकता, मिलाने पर उसकी पहचान सहज ही की जा सकती है। अब हम उनकी वाणी की भंगिमा एवं वक्रता के सौन्दर्य का निरूपण करने वाले कुछ छन्दों को प्रस्तुत करेंगे। पहले यह छन्द लीजिए—

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें बिन तुम्हैं मरि मरि जाँन,
एक गाँव बसि ऐसी जियै राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत औ बिसासी यहै कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसें सौंई है कृपा ढरक।[2]

वाणी की वक्रता किन-किन मार्गों से घूमती है उसे ध्यान से देखें—तुम्हारा मिलन अनमिलन से मिलाता है—मिलकर भी तुम अनमिले जैसे रहते हो। मैं तुम्हें देख-देख कर ढूंढ़ती हूँ और जब ज्यादा परेशान हो जाती हूँ तो तुम हमारी दुख-दशा देख कर मिल जाते हो। इस प्रकार तुम मित्र और विश्वासघाती दोनों

१. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४४०
२. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०), छं० सं० ४४४

ही हो। यह स्वभाव हमारे हृदय में पीड़ा पैदा करता है। मैं तुमसे डंके की चोट के साथ कहती हूँ कि तुम्हारा आलस्य तो जग गया (तुम अतिशय आलसी बन गए) और दया करने की तुम्हारी आदत सो गई है (तुम कठोर बन गए हो)।

विरोध मूलक प्रयोग—वचन वक्रता की सच्ची करामात विरोध मूलक प्रयोगों में खूब देखने को मिलती है। ऐसे छन्दों में यह विरोध ही भाव व्यंजना के उत्कर्ष और अनुभूति की तीव्रता में पर्याप्त योग देता है—इस सम्बन्ध में एक छन्द लीजिए—

औसर सँभारौ न तो अनआइबे के संग,
दूर देस जाइबे को प्यारी नियराति है।[1]

विरहिणी का संदेश देती हुई सखी कह रही है कि हे कृष्ण, अवसर पर विचार करें (यह अवसर चूकने का नहीं है), अन्यथा तुम्हारे 'अनागमन' (न आने) के साथ ही वियोगिनी भी दूर देश जाने के लिए (मृत्यु के निकट हो रही) है। गम्भीर भावानुभूति का यह उत्कर्ष दूर और निकट के द्वारा उत्पन्न किया गया है। कभी-कभी विरोध को कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह भावना का एक अभिन्न अंग बन कर उसमें घुल मिल जाता है और वह अलग से जुड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता—उदाहरण लें—

उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत है।[2]

हे प्रियतम, हमारी आँखों में तो उजड़न बसी हुई है (हमारी आँखें आपको देखे बिना उदासीन रहती हैं)। लेकिन सुन्दर बस्ती तो वहीं है, जहाँ आप जा बसे हैं। यहाँ उजरनि बसी में विरोध की प्रवृत्ति प्रदर्शित है। अब लाक्षणिक प्रयोग पर आश्रित विरोधाभास का चमत्कार देखें। इस छन्द का अन्तिम चरण कितना मर्मस्पर्शी है—

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १६०
२. वही, छं० सं० ५०

गतिनि तिहारी देखि थकानि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी टकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी ह्वौ जाति परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासों कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अन्तर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न तो हमारै ताते,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है।[1]

'मैं तुम्हारी दशा को देख कर रुकने में भी चली जा रही हूँ' विरोध की स्थति अत्यन्त भावमूलक है। इस विरोध की श्लाघा आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी की है[2] और इसमें प्रयुक्त परनि परी के सम्बन्ध में आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि यह अपने ढंग का प्रयोग है।[3] अन्तिम पंक्ति में विरहिणी कह रही है—हे प्रियतम, हमारे पास 'हमारे मन में' न विस्मृत है और न स्मृति; अतः आपका भूलना मुझे लेकर भूलता है। आपके भूलने में मैं अपने आपको भी भूल जाती हूँ। वाणी की यह वक्रता सबके लिए सहज नहीं है, जो वाग्विभूति के धनी हैं और जो भाषा की गतिविधि के पूरे पारखी हैं वे ही ऐसी भंगिमा की कला प्रदर्शित कर सकते हैं। घनानन्द ने फारसी और उर्दू की उक्तियों का बांकपन देखा और समझा था अतः अपनी प्रतिभा की दीप्ति द्वारा फारसी की उक्तियों में भी एक विशिष्टता पैदा कर दी है।

वैदग्ध्य या कवि कौशल वास्तव में कवि की विशिष्ट प्रतिभा पर निर्भर करता है। जो कवि जितना ही प्रतिभाशाली होगा उसकी अभिव्यंजन-कला (Mode of expression) उतनी ही प्रौढ़ और परिष्कृत होगी। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि घनानन्द की भणिति (अभिव्यंजन-

---

१. घनानन्द कवित्त, छं० सं० १४४
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं०रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४०, सं० २००३ का संस्करण
३. घनानन्द कवित्त, पृ० ८१

कला) बड़ी ही उच्चकोटि की और नितान्त अनूठी थी। उन्होंने विरोध मूलक शैली को आधार बनाकर 'भावना भेद सरूप' का उद्‌घाटन बड़ी सफलता के साथ किया है। उदाहरणार्थ यह छन्द लें—

हाय निरदई को हमारी सुधि कैसें आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यो त्यों हित कचाई पाक्यो,
ताके गुन गन घनआनँद कहा गनौ।[1]

भाव यह है कि वह प्रेमी प्रेम को कच्चा करने में पक्का (कुशल, चतुर) है और झूठ को सच्चा करने में लगा रहता है—वह सत्य का निर्वाह करने में निपुण नहीं है, अपितु उसे झूठ कर दिखाने में जरूर सच्चा है। कवि ने जिस कैंड़े के साथ प्रेमी की निष्ठुरता, विश्वासघात और उसकी झुठाई का संकेत इस छन्द में किया है, वह सबके लिए सुलभ नहीं। इन्होंने अपने प्रयोग वैशिष्ट्य की करामात कभी-कभी ऐसे ढंग से प्रदर्शित की है कि उससे वाणी की भंगिमा का लावण्य स्वतः निखर उठा है। उदाहरण के लिए, विरोध मूलक शैली का यह छन्द उठा लीजिए, इसमें कवि की अभीष्ट भाव-व्यंजना द्रष्टव्य है—

सुधि करें भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कों।
जातें सुधि भूलै सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसें सुधि हौन कों।
मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरति नाथ,
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कों।
ऐसी भूलहू सों सुधि रावरी न भलै क्यौंहूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कों।[2]

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २६६

२. घनानन्द ग्रन्थावली, छं० सं० ४२५

इस छन्द में कवि ने समस्त स्वारस्य सुधि और भूल के चमत्कार द्वारा उत्पन्न किया है। इस प्रकार के प्रयोग दूसरे कवियों में भी मिले हैं, पर घनानन्द ने ऐसे चमत्कारिक प्रयोगों को रस-चक्र के भीतर ही रखा, उन्हें वहाँ से हटा कर इन्होंने कोरे चमत्कारिक चक्र में नहीं डाला। अतः ये प्रयोग अधम काव्य (कूट या प्रहेलिका) की कोटि में नहीं आ सके। और रससिक्त शब्दावली में कवि का हृदय स्वतः इस प्रकार लिपटा चला आया है कि उसे देखकर सहृदय पाठक झूमने लगता है। घनानन्द ने सुधि, भूल, मिलन और बात जैसे शब्दों के द्वारा भावों की वक्रता की ऐसी चतुराई कई स्थलों पर प्रकट की है। बात की करामात का यह नमूना लें—

आँखिन मूँदबो बात दिखावत सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात सरूप अनूप अरूप है भूल्यौ कहा तू अलेखहि लखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि काननि बीच बसे घनाआनँद मौन बखान सुदेखिलै।[1]

यहाँ भी आद्योपान्त विरोध का प्राधान्य है, पर विरोध की तह में भावों की उदात्तता इस प्रकार व्याप्त है कि जब मर्मी इस तह को खोलता है तो उसे अलेखहि (ब्रह्म) लेख जैसे शब्दों का रहस्य ज्ञात होता है।

शैली-वैशिष्ट्य—किसी भी रचना की शैली उसके बहिरंग की सजावट नहीं, बल्कि वह उस रचना विशेष का मूलभूत अंग है, दूसरे शब्दों में वह मनुष्य के शरीर का वस्त्र नहीं है जिसे वह पहन लेता है, बल्कि वह उसके शरीर के मांस, अस्थि और रक्त के तुल्य हैं, इसीलिए शैली को उन समस्त विचारों और अनुभूतियों के मण्डल से पृथक् रख कर विवेचित करना नितान्त असम्भव है जो उसे जीवित रखते हैं। इस तथ्य को जे० मिडल्टन मरी ने अपने शब्दों में यों व्यक्त किया है—

Style is organic—not the clothes a man wears, but the flesh, bone and blood of his body. Therefore it is really impo-

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १८८

ssible to consider styles apart from the whole system of perceptions and feelings and thoughts that animate them.[1]

इस दृष्टि से घनानन्द की समस्त रचना का अनुशीलन करने पर स्पष्ट मालूम होता है कि उनकी काव्य-रचना में जो भी वैशिष्ट्य है, वाणी में जो भी भंगिमा है, वह आभ्यंतरिक प्रेरणा के कारण और काव्य में जो भी वक्रता है वह अन्तः स्पर्श का ही परिणाम है। अतः उनकी शैली उन रीति कवियों से बिल्कुल भिन्न है, जो अनुप्रास, यमक और श्लेष के चमत्कार के द्वारा अपने काव्य में दीप्ति उत्पन्न करने का सायास प्रयत्न किया करते थे। उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि लोग कवित्त बनाने में लगे हुए हैं—काव्य-रचना में सायास कल्पना और बुद्धि का कौशल दिखलाते हैं, पर मेरे व्यक्तित्व का निर्माण तो मेरी रचना करती है—अनुभूति एवं हृदय की प्रकृत संवेदना से ही मेरे छन्दों की रचना होती है।

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसानि लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यों घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत।[२]

अर्थात् प्रिय के तीक्ष्ण कटाक्ष बाण रूपी मेरे कवित्त मेरी तीव्र दशाओं पर और भी साण चढ़ा देते हैं, मेरे प्रेम को और अधिक बढ़ा देते हैं।

विरोध मूलक शैली—इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता इनकी विरोध मूलक-प्रवृत्तियों में पाई जाती है। इसकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में की भी जा चुकी है। यहाँ, शैली की वक्रता और दीप्ति को ये विरोध किस प्रकार बढ़ा देते हैं, उनकी एकाध बानगी और दी जा रही है—

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सों कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर गाँठि त्यों अन्तर खोलति है।

---

1. The problem of Style—J Middleton Murry, page 136, Published in 1930

२. घनानन्द कवित्त, छं० सं० २०६

रिस रंग महा रस रंग बढ़यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पियाँ के हिये कितकौ फिरि बैठि कलोलति है।[1]

अस्वीकार करना ही तुम्हारे मन ने स्वीकार किया है और मौन ही से तुम कुछ बोलती हो—मौन मुद्रा में ही अपनी नाराजगी व्यक्त कर देती हो। तुम प्रिय को न देखने की ओर देख रही हो दूसरे शब्दों में उन्हें देखना ही नहीं चाहती। हृदय की गाँठ की ओर ही तेरा हृदय खुला है—हृदय में गाँठ रखने के लिए ही तो तुम अपना उल्लास प्रकट करती हो। रोष में ही तुम्हारा प्रेम बढ़ता है—क्रोध करने में ही तुम्हारी रुचि है, तुम्हें आनन्द मिलता है और जड़ता के साथ ही घूम रही हो—जड़ता को ही अपने स्वभाव का अंग बना रखा है, पर प्रियतम के हृदय में तो तुम्हारा मुँह फेर कर बैठना ही क्रीड़ाकर रही है—तुम्हारे यह मान की मुद्रा उनके हृदय में बस गई है। वस्तुतः इस छन्द में शैली की वक्रता किस कैंड़े के साथ हृदय पर चोट करती है, यह सुस्पष्ट है।

भावात्मक शैली—जहाँ वक्रता मूलक शैली में विरोध का चमत्कार लक्षित होता है वहीं भावात्मक या भावमूलक शैली में बिना विरोध की आवृत्ति के ही हृदय की प्रांजलता, और ऋजुता का स्पष्ट आभास मिलता है। रस-संवेदना का ऐसा स्पष्ट बिम्ब (Image) अन्यत्र प्रायः नहीं मिलता। इस कथन की पुष्टि के लिए कविवर घनानन्द का छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है—

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसें उराहनो दीजिए जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिए जू।
घनआनंद जीवन प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए जू।
नित नीके रहौ तुम्हें चाढ़ कहा पै असीस हमारियौ लीजिए जू।[2]

यों फारसी प्रेम काव्यों में शिकवा-शिकायत की काफी चर्चा हुई है पर घनानन्द की उपालम्भ मूलक रचनाओं में जो गम्भीरता है, रस मग्नता की जो प्रवृत्ति है, वह उसमें नहीं मिलती। ऊपर के छन्द में 'अब तौ सब सीस चढ़ाय

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २९७
२. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ६८

ssible to consider styles apart from the whole system of perceptions and feelings and thoughts that animate them.[1]

इस दृष्टि से घनानन्द की समस्त रचना का अनुशीलन करने पर स्पष्ट मालूम होता है कि उनकी काव्य-रचना में जो भी वैशिष्ट्य है, वाणी में जो भी भंगिमा है, वह आभ्यंतरिक प्रेरणा के कारण और काव्य में जो भी वक्रता है वह अन्तः स्पर्श का ही परिणाम है। अतः उनकी शैली उन रीति कवियों से बिल्कुल भिन्न है, जो अनुप्रास, यमक और श्लेष के चमत्कार के द्वारा अपने काव्य में दीप्ति उत्पन्न करने का सायास प्रयत्न किया करते थे। उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि लोग कवित्त बनाने में लगे हुए हैं—काव्य-रचना में सायास कल्पना और बुद्धि का कौशल दिखलाते हैं, पर मेरे व्यक्तित्व का निर्माण तो मेरी रचना करती है—अनुभूति एवं हृदय की प्रकृत संवेदना से ही मेरे छन्दों की रचना होती है।

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसानि लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यों घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोंहि तौ मेरे कवित्त बनावत।[२]

अर्थात् प्रिय के तीक्ष्ण कटाक्ष बाण रूपी मेरे कवित्त मेरी तीव्र दशाओं पर और भी साण चढ़ा देते हैं, मेरे प्रेम को और अधिक बढ़ा देते हैं।

विरोध मूलक शैली—इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता इनको विरोध मूलक-प्रवृत्तियों में पाई जाती है। इसकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में की भी जा चुकी है। यहाँ, शैली की वक्रता और दीप्ति को ये विरोध किस प्रकार बढ़ा देते हैं, उनकी एकाध बानगी और दी जा रही है—

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सों कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर गाँठि त्यों अन्तर खोलति है।

---

1. The problem of Style—J Middleton Murry, page 136, Published in 1930
२. घनानन्द कवित्त, छं० सं० २०६

रिस रंग महा रस रंग बढ़्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पियाँ के हियै कितकौ फिरि बैठि कलोलति है।[1]

अस्वीकार करना ही तुम्हारे मन ने स्वीकार किया है और मौन ही से तुम कुछ बोलती हो—मौन मुद्रा में ही अपनी नाराजगी व्यक्त कर देती हो। तुम प्रिय को न देखने की ओर देख रही हो दूसरे शब्दों में उन्हें देखना ही नहीं चाहती। हृदय की गाँठ की ओर ही तेरा हृदय खुला है—हृदय में गाँठ रखने के लिए ही तो तुम अपना उल्लास प्रकट करती हो। रोष में ही तुम्हारा प्रेम बढ़ता है—क्रोध करने में ही तुम्हारी रुचि है, तुम्हें आनन्द मिलता है और जड़ता के साथ ही घूम रही हो—जड़ता को ही अपने स्वभाव का अंग बना रखा है, पर प्रियतम के हृदय में तो तुम्हारा मुँह फेर कर बैठना ही क्रीड़ाकर रही है—तुम्हारे यह मान की मुद्रा उनके हृदय में बस गई है। वस्तुतः इस छन्द में शैली की वक्रता किस कैंड़े के साथ हृदय पर चोट करती है, यह सुस्पष्ट है।

भावात्मक शैली—जहाँ वक्रता मूलक शैली में विरोध का चमत्कार लक्षित होता है वहीं भावात्मक या भावमूलक शैली में बिना विरोध की आवृत्ति के ही हृदय की प्रांजलता, और ऋजुता का स्पष्ट आभास मिलता है। रस-संवेदना का ऐसा स्पष्ट बिम्ब (Image) अन्यत्र प्रायः नहीं मिलता। इस कथन की पुष्टि के लिए कविवर घनानन्द का छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है—

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसें उराहनो दीजिए जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिए जू।
घनआनंद जीवन प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए जू।
नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजिए जू।[2]

यों फारसी प्रेम काव्यों में शिकवा-शिकायत की काफी चर्चा हुई है पर घनानन्द की उपालम्भ मूलक रचनाओं में जो गम्भीरता है, रस मग्नता की जो प्रवृत्ति है, वह उसमें नहीं मिलती। ऊपर के छन्द में 'अब तौ सब सीस चढ़ाय

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २९७
२. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ६८

लई' में कितनी व्यंजना छिपी है। और इस कथन में—मेरे बाँटे तो आप की सुधि पड़ी है और आपके हिस्से में मेरा भूलना है—मानो हृदय की वास्तविक व्यथा का एक कारुणिक चित्र ही उपस्थित कर दिया गया हो। कभी-कभी नायिका व्यंग्य की लपेट से अपनी वाणी को पृथक् रखकर प्रियतम के प्रति इन शब्दों में उलाहना देती है—'बसि के एक गाँव में एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजिए जू।' भावात्मक शैली में रची गई रचनाएँ इनके भक्ति विषयक पदों में भी मिली हैं, पर प्रेम व्यंजना में ऐसी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं।

अलंकृत शैली—इनकी तीसरी शैली अलंकृत कही जाती है। यद्यपि अलंकृत शैली की रचनाओं में इन्होंने बहुत रुचि नहीं दिखाई है, फिर भी जहाँ-तहाँ इस शैली का भी वैशिष्ट्य या चमत्कार देखने को मिला है। इनकी अलंकृत शैली के सम्बन्ध में आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र का कथन है—'इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुन्दरता के भेदों—रमणीयता की विविध स्थितियों से पूर्णतया अभिज्ञ थे। जग की कविताई से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनानन्द ने विरोधाभास का सहारा लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नहीं पड़ने पाया है।'[1] इनकी अलंकृत शैली का निम्नलिखित छन्द बहुत प्रसिद्ध है और इसकी श्लाघा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी की है—

घेरि-घबरानी उबरानी ही रहति घन,
आनँद आरति राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान रूप के अधार बिन,
ब्याकुल बिकार भरो भरी सुजरति हैं।
अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौंहू धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अखियाँ निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।[2]

---

१. घनानन्द कवित्त, भूमिका भाग, पृ० ८
२. घनानन्द कवित्त, छं० सं० २९

यद्यपि महाकवि देव ने 'जोगिनी ह्वै बैठी हैं वियोगिनी की आंखियाँ' में कलात्मक प्रौढ़ि के साथ ही भावों की अतल गहराई में भी उतरने का प्रयास किया है, पर घनानन्द के इस छन्द में कुछ ऐसी ताजगी और भाव-व्यंजना का ऐसा प्रभावोत्पादक रूप व्यक्त हुआ है जो देव के छन्द में नहीं मिलता। इसमें आयुर्वेद की बातों को लेकर जिस कलात्मकता के साथ मजमून बाँधा गया है, वह कोरा चमत्कार का ही आनन्द नहीं देता, अपितु वियोगिनी की हृद्गतव्यथा को भी साकार कर देता है। आयुर्वेद में भस्मक एक रोग बताया गया है और कहा है कि जब यह रोग उत्पन्न होता है तो भोजन शीघ्र पच जाता है और भूख बराबर बनी रहती है। यहाँ यह बताया गया है कि एक तो आँखें स्वभाव से पेटू हैं, दर्शन की तृप्ति नहीं होती दूसरे उन्हें भस्मक रोग भी हो गया है, अतः जो भी खाती हैं वह भस्म होता जाता है। अतः इस रोग से मुक्ति पाने लिए उन्हें लंघन (उपवास) करना पड़ता है। (प्रियतम के दर्शन-लाभ से वंचित हैं।) कवि ने इसमें श्लेष द्वारा पूरी करामात दिखाई है।

भाषा

ब्रजभाषा प्रवीन—घनानन्द को ब्रजनाथ ने ब्रजभाषा-प्रवीन कहा और ब्रजभाषा प्रवीन के साथ ही भाषा प्रवीन भी बताया है। पहले ब्रजभाषा प्रवीन का क्या प्रयोजन है, उसे समझ लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने एक महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ब्रज भाषा प्रवीन से तो यही प्रतीत होता है कि जो ब्रज भाषा के शुद्ध स्वरूप तथा उसकी शक्ति तथा महत्त्व का पूरा जानकार हो। घनानन्द ने अपने काव्य में ब्रज भाषा में इन्हीं गुणों को प्रत्यक्ष भी किया है।[1] इसी प्रकार भाषा प्रवीन पर भी उन्होंने विचार किया है, उनका कहना है कि "भाषा के अन्य गुणों, भाषा की शक्ति, भाषा के प्रयोग करने की क्षमता अथवा रीति और शैली के लिए ही उन्होंने भाषा प्रवीन का प्रयोग किया और काव्यगत अन्य सौन्दर्य का संकेत 'उन्होंने

---

1. घनआनन्द—ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १२६

सुन्दरतानि' के भेद के भीतर कर दिया है।"[1] इसमें किंचित संदेह नहीं कि घनानन्द सच्चे अर्थों में जबादानी का दावा करने वाले एक बड़े ही कुशल कवि थे। भाषा की विशेषता-ब्रजभाषा के स्वरूप और उसकी व्यंजना शक्ति की इन्होंने जैसी नाड़ी टटोली थी और उसकी बारीकियों का जैसा व्यापक ज्ञान इन्होंने प्राप्त किया था, वह बिहारी को छोड़कर पूरे रीतिकाल में किसी भी कवि में ढूंढ़ने से भी न मिलेगा। ये ब्रजभाषा प्रवीन के साथ ही भाषा के भी मर्मी आचार्य थे—दूसरे शब्दों में संस्कृत के ज्ञान के साथ ही उन्होंने फारसी-उर्दू आदि के शब्द भण्डार और उसके प्रयोग वैशिष्ट्य को समझा-बूझा था। इसके अतिरिक्त अपने विशिष्ट-प्रयोगों का भी दावा इन्होंने किया है, जिसकी चर्चा यथा प्रसंग की जाएगी।

यह कहना असत्य न होगा कि मध्यकाल में क्या भक्ति-साहित्य और क्या शृङ्गार-साहित्य दोनों ही साहित्यों में ब्रजभाषा का जितना बोल-बाला था, उतना किसी अन्य भाषा का नहीं। ब्रजभाषा केवल मथुरा मण्डल के आस-पास ही नहीं बोली जाती थी बल्कि ब्रज प्रदेश से बाहर भी ब्रज भाषा में रचना करने वाले एक नहीं अनेक कवि हो गये हैं। ब्रज भाषा की मर्मज्ञता के लिए ब्रज-वास भी अनिवार्य नहीं समझा गया। इसीलिए आचार्य भिखारी दास ने स्व-काव्य निर्णय में लिखा है—

ब्रजभाषा हेतु ब्रज वास ही न अनुमानौ,
ऐसे-ऐसे कविन की बानीहू सों जानिये।

इससे स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के लिये कवि की वाणी या प्रयोग ही उनकी भाषा मर्मज्ञता का सबसे बड़ा एवं ज्वलंत प्रमाण माना गया। यद्यपि सम्प्रति ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है किन्तु एक समय ऐसा भी था जब ब्रजभाषा उत्तर प्रदेश की ही रानी या महारानी नहीं थी, बल्कि वह पश्चिम में पंजाब, गुजरात तक अपना स्वत्व बनाए हुए थी और पूर्व में बंगाल तक अपनी धाक की बराबर उद्घोषण कर रही थी। रीतिकाव्य काव्य-कौशल और प्रौढ़ कलात्मक विधान की दृष्टि से अतिशय सराहनीय है, पर उस युग में

१. घनआनन्द—ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १२६

भूषण, सूदन और देव जैसे कवियों ने भाषा के स्वरूप को कम विकृत नहीं किया। हाँ, इस युग में बिहारी और घनानन्द ही ऐसे कवि थे जिन्होंने शब्द-साधना का अच्छा परिचय दिया है। दूसरे शब्दों में नये-नये शब्दों की खोज, शब्दों का शोधन, परिष्करण, अर्थदीप्ति, वर्णमैत्री, शब्दमैत्री, लाक्षणिक प्रयोग आदि के द्वारा भाषा को जितना समृद्ध, सुसम्पन्न और व्यंजना शक्ति से परिपूर्ण किया, उतना क्या, उसका शतांश प्रयास भी दो सौ वर्षों के भीतर नहीं किया गया। कदाचित् इन्हीं सब कारणों से झुंझला कर हिन्दी के मान्य आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने एक स्थान पर लिखा है—"ब्रजभाषा का कोई व्याकरण न होने से तथा अशिष्ट और अशिक्षित लोगों के कवित्त सवैया कह चलने से वाक्य रचना और भी अव्यवस्थित तथा भाषा और भी बिना ठिकाने की हो गई। कवियों का ध्यान भाषा के सौष्ठव और सफाई पर न रह गया। शब्दालंकार की धुनि रही। इससे 'च्युत संस्कृति' और 'ग्राम्यत्व' दोष बहुत कुछ आ गया। भूषण कवि तक-'भूखन पियासन हैं नाहन को निंदते' भनने में में कुछ भी-न हिचके।"[1]

कहा जाता है कि ब्रजभाषा के मान्य विद्वान बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बिहारी और घनानन्द की ही भाषा को व्याकरण की दृष्टि से कुछ ठीक-ठिकाने की बताया था और इनकी रचनाओं के आधार पर एक ब्रजभाषा का व्याकरण तैयार करने का संकल्प भी किया था, पर अपने असामयिक निधन के कारण उसे वे पूरा न कर सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी घनानन्द और रसखान की भाषा को व्याकरणीय दृष्टि से अति उत्तम कहा। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित अंशों को देखें—"पर यह न समझना चाहिये कि भाषा की परवा न करने वाले कवि हुए ही नहीं। रसखान और घनानन्द ऐसे जीती जागती वाणी के कवियों को देखते कौन ऐसा कह सकता है? ब्रजभाषा के कवियों में जबान का अगर किसी ने दावा किया है तो घनानन्द ने।"[2]

भाषा सौष्ठव—घनानन्द की भाषा की कांति, अर्थमत्ता, गम्भीरता आदि

१. बुद्ध चरित की भूमिका—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, ५४
२. वही, पृ० ५४

की श्लाघा घनानन्द के प्रशस्तिकार व्रजनाथ ने भी की है।[1] इनकी भाषा के सम्बन्ध में डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा है—'शब्दों में नयी-नयी व्यंजनाएँ भरना, सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहरे से गहरे भावों को शब्दों में मूर्त करना वे भली-भाँति जानते थे। आवश्यकता के अनुसार शब्दों में वे लोच, संकोच, विस्तार, वक्रता आदि भी पैदा कर सकते थे।[2]

घनानन्द अपनी भाषा को समृद्ध और उसे मूढ़ भाव-व्यंजक बनाने में अति पटु थे। यही कारण है कि परवर्ती काव्य परम्परा के कवियों द्वारा उनकी भाषा की अनुकृति नहीं हो सकी। वे इस क्षेत्र में अकेले थे और आज भी उनकी भाषा अपनी विशिष्टता के कारण अन्यों से अपनी पृथकता की स्पष्ट घोषणा कर रही है। वे सच्चे अर्थों में ब्रजभाषा प्रवीन थे, क्योंकि अपनी भाषा में उन्होंने ब्रज-भाषा के ऐसे-ऐसे ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है कि वे अन्य कवियों में प्रायः नहीं मिलते। नमून के तौर पर हम उनके कुछ ठेठ शब्दों को प्रस्तुत कर रहे हैं—

ठेठ शब्द—आवरो (व्याकुल), गुरझनि (गाँठ), डेल (ढेला), रयौ (अनुरक्त होना), मरक (खिंचाव), निखरक (बेखटके, निशंक), अछवाई (सुन्दरता), गादरौ (शिथिल), इकौंसे (अकेले), अझूनो (आग), अंगेट (अंगदीप्ति), कोंबरे (कोमल), ऊठ (उठान), गरैठी (टेढ़ी), ओटपाय (शरारत) आदि।

शब्द मैत्री—यद्यपि घनानन्द रीति की बँधी परिपाटी से ऊब गये थे और वे काव्य की स्वच्छन्दता के प्रबल समर्थक थे, फिर भी रीति कवियों जैसी चातुरी एवं कौशल से वे अनभिज्ञ न थे। उन्होंने भी यमक—और श्लेष द्वारा काव्य-कौशल व्यक्त किया है, पर अपने ढंग का और सर्वथा नूतन। वे शब्दों की इस मैत्री के द्वारा भाव-व्यंजना का प्रकृष्ट रूप प्रदर्शित करना कभी नहीं भूलते। उन्होंने एक ही शब्द के प्रयोग द्वारा कितने नये-नये अर्थों का उद्घाटन किया है और कितनी नूतन भंगिमा का विधान किया है, यह इनके छन्दों में सुस्पष्ट है। उदाहरण के लिए 'बूझि' के प्रयोग-लालित्य को देखें—

रीझि-तिहारी न बूझि-परै अहौ बूझति हैं कहौ रीझत काहैं।
बूझि के रीझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।

---

१. घनानन्द कवित्त, पृ० २३२, छं० सं० ४
२. रीति स्वच्छन्द काव्यधारा—डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, पृ० ३७२

रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत बूझि न रीझेहूँ ओर निवाहैं।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौं घनआनन्द रीझ औ बूझहि चाहैं।[१]

घनानन्द की शब्द मैत्री का अतिशय सधा हुआ प्रयोग देख कर ही कहना पड़ता है कि इनकी भाषा में सहज प्रवाह और संगीत की माधुरी (Melody) विद्यमान है। इनकी भाषा की इस विशेषता को लक्ष्य करके ही श्री ज्ञानवती त्रिवेदी ने एक स्थान पर लिखा है—'इनकी भाषा में एक विशेषता यह भी है कि वह इतनी मँजी हुई और चिकनी होती है कि जीभ अपने आप ही उस पर फिसलती-चलती है, कहीं अटकती ही नहीं। प्रतीत होता है कि उसके सर से निकल जाने के लिए ही समान शब्दों की पटरी बिछा दी गई है।'[२] शब्द मैत्री विषयक यह छन्द लें—

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छई।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजी अभिलाषनि लाख जई।
घनआनंद ही उनए इन मैं बहुभाँतिनि ये उन रंग रई।
रस सूरति स्यामहि देखत ही सजनी अँखियाँ रसरासि भई।[३]

नूतन प्रयोग—घनानन्द ने अपनी भाषा में कुछ ऐसे प्रयोगों की प्रवृत्ति दिखाई है जो नितान्त नवीन और सर्वथा मौलिक है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द लीजिए—लाज में लपेटी चितवनि, रीझि के पानि, दृग-हाथनि, आँखिन के उर, चाहनि अंक, अकुलानि छुरी, धीरे गिलै, परनिपरी आदि प्रयोग उनके असाधारण भाषाधिकार के ही बोधक कहे जा सकते हैं। इन्होंने शब्दों को गढ़ भी लिया है, यथा—दिन दानी के ढर्रे पर दिन दीन आदि। इनके प्रयोग वैशिष्ट्य को दृष्टि में रख कर ही आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—'घनानन्द और ठाकुर ने ब्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थक प्रयोग करने वाले में कहाँ? लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है, हिन्दी के दूसरे कवि ने नहीं। घनानन्द

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आ० वि० प्र० मि०, छं० सं० ७५
२. घनआनँद—ज्ञानवती त्रिवेदी, पृ० १३७
३. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आ० वि० प्र० मि०, छं० सं० ४४३

की रचना में तो भाषा स्थान-स्थान पर अर्थ की सम्पत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है।''[1]

शब्दों के परिष्करण, शोधन और उसमें लोच एवं मार्दव गुणों को उत्पन्न करने में घनानन्द की मौलिक दृष्टि का सहज परिचय मिलता है। उन्होंने कुछ ऐसे प्रयोग करके दिखाए हैं जो हिन्दी के अन्य कवियों में शायद ही मिलें। आधुनिक कवियों में जिन प्रयोगों की नूतनता की भूरिशः श्लाघा की जाती है ऐसे प्रयोग बहुत पहले घनानन्द की रचना में मिल चुके हैं। यही नहीं अँग्रेजी के जिस Transferred epithat (विशेषण विपर्यय) की चर्चा की जाती है उसका रूप ह्वै है सोऊ घरी भाग उघरी आनन्दघन, में मिल चुका है।

विदेशी शब्दों का प्रयोग—यह कहा जा चुका है कि घनानन्द ब्रजभाषा प्रवीन होने के साथ भाषा प्रवीन भी थे। ये भाषा की गति विधि और उसकी अभिव्यंजना शक्ति (expressive power) से पूर्णतया परिचित थे, और यह संकेत मिलता है कि वे ब्रजभाषा के साथ ही अन्य अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। कम से कम फारसी और उर्दू का तो उन्हें अच्छा ज्ञान था, कारण यह है कि एक तो ये जाति के कायस्थ थे और दूसरे मुहम्मदशाह के दरबार से सम्बद्ध थे, अतः इनका फारसी भाषा का पण्डित होना स्वाभाविक है। पर इन्होंने अपनी भाषा में फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुत समझ-बूझ कर किया है। और मन-माने प्रयोगों से ये बहुत दूर रहे हैं। वस्तुतः अन्य कवियों ने तो पंजाबी, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी और फारसी आदि भाषा के विकृत प्रयोगों से ब्रजभाषा की सहजता और उसके सौन्दर्य को प्रायः नष्ट कर दिया है, पर घनानन्द जी ने ब्रजभाषा को सँवारने एवं उसे सुन्दर रूप देने में श्लाघ्य प्रयत्न किया है। इन्होंने फारसी के जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनकी कुछ बानगी निम्नांकित है—

कतारनि, पानस, बहीर, आब आदि। इनमें बहीर तो अपने शुद्ध रूप में प्रयुक्त है, पर फानूस, की जगह कवि ने ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार पानस कर दिया है। कतारनि भी ब्रज के साँचे में अच्छी तरह ढल गया है। हाँ, आब अपने शुद्ध रूप में प्रयुक्त है, पर इससे अर्थ करने में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती, इनके ऐसे कलात्मक और सजग प्रयोगों को लक्ष्य करके

१. घनानन्द कवित्त—भूमिका, पृ० ९

आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव भंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे।[1]

लाक्षणिक प्रयोग—घनानन्द के काव्य में भाषा के लाक्षणिक प्रयोग पदे-पदे मिलते हैं। इन्होंने लक्षणा और व्यंजना के सहारे भाषा को जिस विस्तृत मैदान में दौड़ाया है, वहाँ तक पहुँचने की शक्ति रीतियुग के सजग कवि बिहारी में भी न थी। बिहारी की भाषा की कसावट और उसकी वक्रता की चर्चा बहुत होती है, पर लक्षणा के क्षेत्र में उसकी दृष्टि बहुत परिमित और सीमित थी। यों उनके दोहे नावक के तीर अवश्य कहे जाते हैं, पर आभ्यंतरिक के संस्पर्श से उनकी भाषा प्रायः असम्पृक्त है। घनानन्द के लाक्षणिक प्रयोगों के सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—'लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में, अर्थात् वर्त्तमान काल की नूतन काव्य धारा में ही, अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई।[2]

लोकोक्ति एवं मुहावरे--यद्यपि लाक्षणिक प्रयोगों की दृष्टि से घनानन्द ने रूढ़ि एवं प्रयोजनवती दोनों ही लक्षणाओं का प्रयोग अपने काव्य में किया है पर पहले हम रूढ़िलक्षणा विषयक वैशिष्ट्य पर किंचित विचार कर लेना उचित समझते हैं। लक्षणा के विवेचन के अन्तर्गत रूढ़ि लक्षणा प्रायः कहावतों एवं मुहावरों के रूप में प्रयुक्त होती है! घनानन्द ने अपनी वाणी में वक्रता एवं कथन की भंगिमा के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए यथास्थल सुन्दर कहावतों और

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३३८, सं० २००३ का संस्करण
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३३८

मुहावरों का हृदयग्राही प्रयोग किया है। हम इस सम्बन्ध में उनकी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत करेंगे। पहले दान-लीला का यह छंद लें—

जीभ सँभारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यों अब खायो थपेरे।
ज्यों-ज्यों करी कछु कानि कनौड़ त्यों मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरे।
खाइ कहा फल माइ जने जिय देखौ बिचारि पिता तन हेरे।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौं कहौं टेरे।[1]

यहाँ जीभ संभारि न बोलत, मुँह चाहत क्यों अब खायो थपेरे, मूड़ चढ़े, खाइ कहा फल माइ जने, पिता तन हेरे द्वारा जहाँ सफल मुहावरों का प्रयोग किया गया है। वहीं कंज और कनेर में बड़ा फर्क है में लोकोक्ति का विधान बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। इस लोकोक्ति का आशय यह है कि कहाँ तुम (श्री कृष्ण) कनेर (निम्नस्तर के व्यक्ति) और कहाँ मैं (गोपी) कंज (उच्च-स्तर की रमणी) हमारी-तुम्हारी क्या तुलना हो सकती है ?

मुहावरे किसी भी भाषा के प्राण माने गए हैं। वास्तव में भाषा के शक्ति-वर्धन में इन मुहावरों का महत्त्वपूर्ण योग होता है। उर्दू में तो मुहावरों के आधार पर मजमून की पूरी बंदिश बहुत ही उस्तादाने तरीके से की गई है। कभी-कभी तो पूरे शेर में ऐसा लगता है गोया सब कुछ मुहावरे पर ही टिका हुआ है। यथा—

गैर ने मेंहदी लगाई उसके हाथों में जो दाग,
खून आँखों में उतर आया हिना को देखकर।[2]

क्रोध या अमर्ष भाव व्यंजित करने के लिए कवि ने आँखों में खून उतर आना मुहावरे का सुन्दर-प्रयोग किया है, पर इसमें केवल मुहावरे का ही चमत्कार लक्षित है, सान्द्र भावानुभूति और मार्मिक संवेदना का सर्वथा अभाव है। घनानन्द में मुहावरों का प्रयोग किसी विशिष्ट भाव-व्यंजना के अभिप्राय से हुआ है, यों ही चमत्कारोत्पादन की दृष्टि से नहीं। उदाहरणार्थ घनानन्द

१. घनानन्द कवित्त—छं० सं० ४०६
२. दीवाने दाग

की इस पंक्ति का समस्त स्वारस्य मुहावरे के कलात्मक प्रयोग के साथ ही भाव-व्यंजना के उत्कर्ष पर टिका हुआ है—तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो अरे मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं। मन लेकर अत्यंत गुरु हृदय को छीन कर एक छटाँक (अपने सौन्दर्य का शतांश) भी नहीं देना चाहते—प्रेमी की निष्ठुरता और उसकी उदासीनता की कितनी बड़ी व्यंजना इसमें निहित है। इसी प्रकार इनके मुहावरों की कुछ-पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

(क) उड़ि चल्यौ रंग कैसें राखियै कलंकी मुख,
अनलेखे कहाँ लौ न घूंघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैसि,
चित चढ़ी मूरति सुजान क्यों उजारियै।
कठिन कुदायँ आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै।[1]

(ख) बसि कै इक गाँव में एहों दई चित ऐसो कठोर न कीजिए जू।

(ग) कब आय हो औसर। जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।[2]

(घ) रूई दियें रहोगे कहा लौं बहरायबे की, कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है।[3]

(ङ) आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौलौं, कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलि है।[4]

लोकोक्तियों का जैसा प्रयोग रीतिमुक्त ठाकुर कवि ने किया है, वैसा प्रयोग घनानन्द में भी नहीं मिलता। ठाकुर की तो सारी रचना लोकोक्तियों के चमत्कार से ही चमत्कृत हो उठी है, दूसरे शब्दों में उनके सवैयों की पूरी दीवाल

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१ प्र० सं०

२. वही, छं० सं० १६३

३. वही, छं० सं० १०४

४. वही, छं० सं० १०४

मुहावरों का हृदयग्राही प्रयोग किया है। हम इस सम्बन्ध में उनकी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत करेंगे। पहले दान-लीला का यह छंद लें—

जीभ सँभारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यों अब खायो थपेरे।
ज्यों-ज्यों करी कछु कानि कनौड़ त्यों मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरे।
खाइ कहा फल माइ जने जिय देखौ बिचारि पिता तन हेरे।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनंद न्यारे रहौं कहौं टेरे।[1]

यहाँ जीभ संभारि न बोलत, मुँह चाहत क्यों अब खायो थपेरे, मूड़ चढ़े, खाइ कहा फल माइ जने, पिता तन हेरे द्वारा जहाँ सफल मुहावरों का प्रयोग किया गया है। वहीं कंज और कनेर में बड़ा फर्क है में लोकोक्ति का विधान बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। इस लोकोक्ति का आशय यह है कि कहाँ तुम (श्री कृष्ण) कनेर (निम्नस्तर के व्यक्ति) और कहाँ मैं (गोपी) कंज (उच्च-स्तर की रमणी) हमारी-तुम्हारी क्या तुलना हो सकती है?

मुहावरे किसी भी भाषा के प्राण माने गए हैं। वास्तव में भाषा के शक्ति-वर्धन में इन मुहावरों का महत्त्वपूर्ण योग होता है। उर्दू में तो मुहावरों के आधार पर मजमून की पूरी बंदिश बहुत ही उस्तादाने तरीके से की गई है। कभी-कभी तो पूरे शेर में ऐसा लगता है गोया सब कुछ मुहावरे पर ही टिका हुआ है। यथा—

ग़ैर ने मेंहदी लगाई उसके हाथों में जो दाग़,
ख़ून आँखों में उतर आया हिना को देखकर।[2]

क्रोध या अमर्ष भाव व्यंजित करने के लिए कवि ने आँखों में खून उतर आना मुहावरे का सुन्दर-प्रयोग किया है, पर इसमें केवल मुहावरे का ही चमत्कार लक्षित है, सान्द्र भावानुभूति और मार्मिक संवेदना का सर्वथा अभाव है। घनानन्द में मुहावरों का प्रयोग किसी विशिष्ट भाव-व्यंजना के अभिप्राय से हुआ है, यों ही चमत्कारोत्पादन की दृष्टि से नहीं। उदाहरणार्थ घनानन्द

---

१. घनानन्द कवित्त—छं० सं० ४०६
२. दीवाने दाग़

की इस पंक्ति का समस्त स्वारस्य मुहावरे के कलात्मक प्रयोग के साथ ही भाव-व्यंजना के उत्कर्ष पर टिका हुआ है—तुम कौन धो पाटी पढ़े हो अरे मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं। मन लेकर अत्यंत गुरु हृदय को छीन कर एक छटाँक (अपने सौन्दर्य का शतांश) भी नहीं देना चाहते—प्रेमी की निष्ठुरता और उसकी उदासीनता की कितनी बड़ी व्यंजना इसमें निहित है। इसी प्रकार इनके मुहावरों की कुछ-पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

(क) उड़ि चल्यौ रंग कैसें राखियै कलंकी मुख,
अनलेखे कहाँ लौं न घूंघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैसि,
चित चढ़ी मूरति सुजान क्यों उजारियै।
कठिन कुदायँ आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै।[1]

(ख) बसि कै इक गाँव में एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजिए जू।

(ग) कब आय हो औसर। जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।[2]

(घ) रूई दियें रहोगे कहा लौं बहरायबे की, कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलि है।[3]

(ङ) आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौलौं, कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलि है।[4]

लोकोक्तियों का जैसा प्रयोग रीतिमुक्त ठाकुर कवि ने किया है, वैसा प्रयोग घनानन्द में भी नहीं मिलता। ठाकुर की तो सारी रचना लोकोक्तियों के चमत्कार से ही चमत्कृत हो उठी है, दूसरे शब्दों में उनके सवैयों की पूरी दीवाल

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१ प्र० सं०
२. वही, छं० सं० १६३
३. वही, छं० सं० १०४
४. वही, छं० सं० १०४

लोकोक्तियों पर ही खड़ी है। पर घनानन्द की वाणी में ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ तो प्रायः मर्मव्यथा के उद्घाटन का ही प्राधान्य है, अतः लोकोक्तियों का विनियोग इसी दृष्टि को लेकर किया गया है। यथा,

सुनी है कै नाही यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपाइहै सु कैसे कलपाइ है।[१]

किन्तु दानलीला में लोकोक्तियों का पैटर्न बदल गया है, उसमें तीखा व्यंग्य अधिक उभर कर आया है—

एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जो बिधना घर बैठें दयौ बित।[२]

प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग—यह कहा जा चुका है कि घनानन्द ने रूढ़ि लक्षणा के अन्तर्गत मुहावरों का चमत्कार प्रदर्शित किया है और प्रयोजनवती लक्षणा के अन्तर्गत उन प्रयोगों को लिया है जिनमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि होती है। घनानन्द स्वलक्षणा के प्रयोग द्वारा कभी लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ की ओर बढ़ गए हैं और कभी ध्वनि की सीमा को स्पर्श करते हुए देखे गए हैं—यथा, कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहि लै बरसौं में प्रयुक्त बिसासी शब्द को चाहे आप विपरीत लक्षणा से विश्वासघाती अर्थ ले लें, चाहे अत्यन्त तिरस्कृतवाच्य ध्वनि से। यह चमत्कार अन्यों में बहुत कम दृष्टिगत हुआ है। यद्यपि उन्होंने लक्षणा का शास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया, पर ढूंढ़ने से लक्षणा के प्रायः सभी भेदों के उदाहरण इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। इन्होंने लक्षणा का प्रयोग कभी अनुभूतियों को तीव्र या उत्कट बनाने के लिये किया है और कभी चमत्कारोत्पादन के लिये। काव्यप्रकाश में प्रयोजनवती लक्षणा के शुद्धा और गौणी दो भेद माने गए हैं। पुनः शुद्धा के चार भेद—१. उपादानलक्षणा, २. लक्षण-लक्षणा, ३. सारोपा और ४. साध्यवसाना—किये गये हैं, और गौणी के सारोपा और साध्यवसाना नामक दो भेद स्वीकार किये

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ७
२. वही, छं० सं० ४०१

गये हैं। घनानन्द के काव्य में प्रयुक्त इन लक्षणाओं में कुछ की चर्चा की जायेगी। पहले गौणी साध्यवसाना की कुछ पंक्तियाँ लें—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।[1]

कवि सम्प्रदाय में श्रृंगार का रंग श्याम माना गया है और अंजन भी श्याम रंग का होता है, पर यहाँ वह लुप्त है। अतः आरोप के विषय के लुप्त होने के कारण इसमें गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। कवि ने मूरति सिंगार में अंजन की ही कल्पना की है। अब उपादान लक्षणा का एक अंश लें—

कित को ढरि गौ वह ढार अहौ जिहि मोतन आंखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।[2]

द्वितीय पंक्ति में कहा गया है कि आप की उस बानि (आदत) ने आलस्य ग्रहण कर लिया है। बानि का आलस्य ग्रहण करना मुख्यार्थ बाध है, लक्ष्यार्थ हुआ आप उस प्रकार मेरी ओर दया नहीं दिखाते जैसे आप सरसता के साथ आ कर मेरी बिनती किया करते थे। यहाँ बानि स्वतः आलस्य कर नहीं सकती, अतः आलस्य प्रदर्शित करने वाले (दया का स्वभाव न दिखाने वाले) श्री कृष्ण का वह अपना अर्थ न छोड़ते हुए आक्षेप कर लेती है। इसी प्रकार एक उदाहरण शुद्धा सारोपा लक्षणा का लीजिए—

कब घनआनन्द ढरौहीं बानि देखें,
सुधा हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजिहौ।[3]

यहाँ मन और घट में किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है, हठ पूर्वक सादृश्य दिखाया गया है। इसी प्रकार इनकी शुद्धा लक्षण-लक्षणा का भी एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १४६
२. वही, छं० सं० ८७
३. वही, छं० सं० १४६

लोकोक्तियों पर ही खड़ी है। पर घनानन्द की वाणी में ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ तो प्रायः मर्मव्यथा के उद्‌घाटन का ही प्राधान्य है, अतः लोकोक्तियों का विनियोग इसी दृष्टि को लेकर किया गया है। यथा,

सुनी है कै नाही यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपाइहै सु कैसे कलपाइ है।[1]

किन्तु दानलीला में लोकोक्तियों का पैटर्न बदल गया है, उसमें तीखा व्यंग्य अधिक उभर कर आया है—

एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जो बिधना घर बैठैं दयौ बित।[2]

प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग—यह कहा जा चुका है कि घनानन्द ने रूढ़ि लक्षणा के अन्तर्गत मुहावरों का चमत्कार प्रदर्शित किया है और प्रयोजनवती लक्षणा के अन्तर्गत उन प्रयोगों को लिया है जिनमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि होती है। घनानन्द स्वलक्षणा के प्रयोग द्वारा कभी लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ की ओर बढ़ गए हैं और कभी ध्वनि की सीमा को स्पर्श करते हुए देखे गए हैं— यथा, कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहि लै बरसौं' में प्रयुक्त बिसासी शब्द को चाहे आप विपरीत लक्षणा से विश्वासघाती अर्थ ले लें, चाहे अत्यन्त तिरस्कृतवाच्य ध्वनि से। यह चमत्कार अन्यों में बहुत कम दृष्टिगत हुआ है। यद्यपि उन्होंने लक्षणा का शास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया, पर ढूंढ़ने से लक्षणा के प्रायः सभी भेदों के उदाहरण इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। इन्होंने लक्षणा का प्रयोग कभी अनुभूतियों को तीव्र या उत्कट बनाने के लिये किया है और कभी चमत्कारोत्पादन के लिये। काव्यप्रकाश में प्रयोजनवती लक्षणा के शुद्धा और गौणी दो भेद माने गए हैं। पुनः शुद्धा के चार भेद— १. उपादानलक्षणा, २. लक्षण-लक्षणा, ३. सारोपा और ४. साध्यवसाना—किये गये हैं, और गौणी के सारोपा और साध्यवसाना नामक दो भेद स्वीकार किये

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ७
२. वही, छं० सं० ४०१

गये हैं। घनानन्द के काव्य में प्रयुक्त इन लक्षणाओं में कुछ की चर्चा की जायेगी। पहले गौणी साध्यवसाना की कुछ पंक्तियाँ लें—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।[1]

कवि सम्प्रदाय में श्रृंगार का रंग श्याम माना गया है और अंजन भी श्याम रंग का होता है, पर यहाँ वह लुप्त है। अतः आरोप के विषय के लुप्त होने के कारण इसमें गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। कवि ने मूरति सिंगार में अंजन की हीं कल्पना की है। अब उपादान लक्षणा का एक अंश लें—

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मोतन आंखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।[2]

द्वितीय पंक्ति में कहा गया है कि आप की उस बानि (आदत) ने आलस्य ग्रहण कर लिया है। बानि का आलस्य ग्रहण करना मुख्यार्थ बाध है, लक्ष्यार्थ हुआ आप उस प्रकार मेरी ओर दया नहीं दिखाते जैसे आप सरसता के साथ आ कर मेरी बिनती किया करते थे। यहाँ बानि स्वतः आलस्य कर नहीं सकती, अतः आलस्य प्रदर्शित करने वाले (दया का स्वभाव न दिखाने वाले) श्री कृष्ण का वह अपना अर्थ न छोड़ते हुए आक्षेप कर लेती है। इसी प्रकार एक उदाहरण शुद्धा सारोपा लक्षणा का लीजिए—

कब घनआनन्द ढरौहीं बानि देखें,
सुधा हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजिहौ।[3]

यहाँ मन और घट में किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है, हठ पूर्वक सादृश्य दिखाया गया है। इसी प्रकार इनकी शुद्धा लक्षण-लक्षणा का भी एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १४६
२. वही, छं० सं० ८७
३. वही, छं० सं० १४६

लोकोक्तियों पर ही खड़ी है। पर घनानन्द की वाणी में ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ तो प्रायः मर्मव्यथा के उद्‌घाटन का ही प्राधान्य है, अतः लोकोक्तियों का विनि-योग इसी दृष्टि को लेकर किया गया है। यथा,

सुनी है के नाही यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपाइहै सु कैसे कलपाइ है।[१]

किन्तु दानलीला में लोकोक्तियों का पैटर्न बदल गया है, उसमें तीखा व्यंग्य अधिक उभर कर आया है—

एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जो बिधना घर बैठें दयौ बित।[२]

प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग—यह कहा जा चुका है कि घनानन्द ने रूढ़ि लक्षणा के अन्तर्गत मुहावरों का चमत्कार प्रदर्शित किया है और प्रयोजनवती लक्षणा के अन्तर्गत उन प्रयोगों को लिया है जिनमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि होती है। घनानन्द स्वलक्षणा के प्रयोग द्वारा कभी लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ की ओर बढ़ गए हैं और कभी ध्वनि की सीमा को स्पर्श करते हुए देखे गए हैं—यथा, 'कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहि लै बरसौं' में प्रयुक्त बिसासी शब्द को चाहे आप विपरीत लक्षणा से विश्वासघाती अर्थ ले लें, चाहे अत्यन्त तिरस्कृतवाच्य ध्वनि से। यह चमत्कार अन्यों में बहुत कम दृष्टिगत हुआ है। यद्यपि उन्होंने लक्षणा का शास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया, पर ढूँढ़ने से लक्षणा के प्रायः सभी भेदों के उदाहरण इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। इन्होंने लक्षणा का प्रयोग कभी अनुभूतियों को तीव्र या उत्कट बनाने के लिये किया है और कभी चमत्कारोत्पादन के लिये। काव्यप्रकाश में प्रयोजनवती लक्षणा के शुद्धा और गौणी दो भेद माने गए हैं। पुनः शुद्धा के चार भेद—१. उपादानलक्षणा, २. लक्षण-लक्षणा, ३. सारोपा और ४. साध्यवसाना—किये गये हैं, और गौणी के सारोपा और साध्यवसाना नामक दो भेद स्वीकार किये

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ७
२. वही, छं० सं० ४०१

गये हैं। घनानन्द के काव्य में प्रयुक्त इन लक्षणाओं में कुछ की चर्चा की जायेगी। पहले गौणी साध्यवसाना की कुछ पंक्तियाँ लें—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।[1]

कवि सम्प्रदाय में श्रृंगार का रंग श्याम माना गया है और अंजन भी श्याम रंग का होता है, पर यहाँ वह लुप्त है। अतः आरोप के विषय के लुप्त होने के कारण इसमें गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। कवि ने मूरति सिंगार में अंजन की ही कल्पना की है। अब उपादान लक्षणा का एक अंश लें—

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मोतन आंखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।[2]

द्वितीय पंक्ति में कहा गया है कि आप की उस बानि (आदत) ने आलस्य ग्रहण कर लिया है। बानि का आलस्य ग्रहण करना मुख्यार्थ बाध है, लक्ष्यार्थ हुआ आप उस प्रकार मेरी ओर दया नहीं दिखाते जैसे आप सरसता के साथ आ कर मेरी बिनती किया करते थे। यहाँ बानि स्वतः आलस्य कर नहीं सकती, अतः आलस्य प्रदर्शित करने वाले (दया का स्वभाव न दिखाने वाले) श्री कृष्ण का वह अपना अर्थ न छोड़ते हुए आक्षेप कर लेती है। इसी प्रकार एक उदाहरण शुद्धा सारोपा लक्षणा का लीजिए—

कब घनआनन्द ढरौहीं बानि देखें,
सुधा हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजिहौं।[3]

यहाँ मन और घट में किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है, हठ पूर्वक सादृश्य दिखाया गया है। इसी प्रकार इनकी शुद्धा लक्षण-लक्षणा का भी एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १४६
२. वही, छं० सं० ८७
३. वही, छं० सं० १४६

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी
लसति ललित लोल चख-तिरछानि में।[१]

यहाँ लपेटी लाक्षणिक शब्द है। लपेटा वस्तुतः वस्त्र जाता है, लज्जा का लपेटना नितांत असंभव है। अतः लक्ष्यार्थ से इसका अर्थ 'सहित' या 'युक्त' होगा। इसका एक उदाहरण और लें—

अंग-अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।[२]

यहाँ तरंग का उठना और रूप का पृथ्वी पर चू पड़ना लाक्षणिक प्रयोग है। वास्तव में तरंग तो जल में उठता है और चूने वाली वस्तु तो तरल होती है; यहाँ इसका लक्ष्यार्थ होगा अतिशय सौन्दर्य का बढ़ना।

शुद्धा सारोपा के साथ ही, इन्होंने गौणी सारोपा का भी प्रयोग यथास्थल किया है। गौणी सारोपा का यह छन्द लें—

छबि को सदन मोद मंडित बदन-चन्द,
तृषित चखनि लाल कब धौं दिखायहौ।[३]

यहाँ बदन चंद में गौणी लक्षणा है। मुख और चंद में सादृश्य के कारण आरोप किया गया है। यहाँ तक तो कवि के लाक्षणिक प्रयोग की बात बताई गई, अब किंचित इनकी व्यंजना पर भी विचार कर लेना चाहिए। यद्यपि इन्होंने लक्षणा के व्यापारों का जितना विस्तार किया है, उतना व्यंजना का नहीं, पर यह न समझना चाहिए कि ये ध्वनि और व्यंजना के प्रयोग में अपटु थे। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनके एक छन्द में प्रत्ययगत व्यंजना के चमत्कार का सुन्दर विवेचन किया है—

जाहित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद-कला कुलधारी,
सोभा समूह मई घनआनन्द मूरति रंग-अनंग जिवारी।
जान महा सहजै रिझवार, उदार विलास मैं रास बिहारी,
मेरो मनोरथ हूँ बहियै, अरु हैं मोमनोरथ पूरन कारी।[४]

---

१. घनानंद कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १
२. वही, छं० सं० २
३. वही
४. घनानन्द कवित्त, पृ० ८४-८५

इस छन्द की अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त मनोरथ में प्रत्ययगत व्यंजना का चमत्कार बताया गया है। इस पंक्ति का आशय यह है कि आपने अपने भक्त अर्जुन के लिए सारथी बनना स्वीकार किया—उनका रथ वहन किया, अतः मेरा भी मनोरथ आप वहन कीजिए (मेरी भी इच्छा की पूर्ति कीजिए)। इसमें 'हू' शब्द के प्रयोग लालित्य पर विचार करते हुए आचार्य मिश्र कहते हैं—'हू' अव्यय के द्वारा इसमें प्रत्ययगत व्यंजना का चमत्कार है। इस शब्द से ही अर्जुन की सारी कथा स्वतः आक्षिप्त हो जाती है। इस प्रयोग का विचार घनानन्द कवित्त की भूमिका में भी किया गया है और वहाँ इसे 'पदांश-ध्वनि' का उत्तम प्रयोग बताया गया है।[१]

उपर्युक्त थोड़ी सी विवेचना से स्पष्ट है कि घनानन्द की वाणी में लक्षणा और व्यंजना का अक्षय कोष-विद्यमान है, जिसे मर्मभेदनी दृष्टि ही जानती है, सबके लिए सहज नहीं।

अप्रस्तुत योजना—काव्य में अप्रस्तुत की योजना प्रस्तुत व्यापार को रमणीय, प्रभावशाली, और भावात्मक या तादात्म्य मूलक स्थिति तक प्रमाता को पहुँचा देने के उद्देश्य से की जाती है। पर जो अप्रस्तुतों को प्रस्तुतों के मेल में न रख कर कोरी शास्त्रीय बातों और पांडित्य प्रदर्शन की विशेषताओं को दृष्टि में रख कर ही चला करते हैं, वे भाव तन्मयता की उस स्थिति का निर्माण नहीं कर पाते जिसे देख-सुनकर हृदय झूम उठता और सिर चालन होने लगता है। इस दृष्टि से विचार करने पर रीतिकाव्य धारा के अन्तर्गत रीतिमुक्त एवं स्वच्छन्दता मार्ग के सच्चे पथिक घनानन्द का स्थान सर्वोपरि है। वास्तव में घनानन्द की वाणी के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने प्रस्तुतों की योजना हृदय के गूढ़ भावों को अधिक प्रभावशाली, प्रभविष्णु और संवेद्य बनाने की दृष्टि से ही की है।

सादृश्य के आधार पर काव्य में अप्रस्तुत योजना तीन प्रकार से की जाती है—

१. सादृश्य मूलक, २. साधर्म्य मूलक, ३. प्रभाव साम्य मूलक।

इन्हीं तीनों सादृश्यों के आधार पर कवि कभी शास्त्रीय या परम्परागत

१. घनानन्द कवित्त की भूमिका, पृ० ९

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी
लसति ललित लोल चख-तिरछानि में।[१]

यहाँ लपेटी लाक्षणिक शब्द है। लपेटा वस्तुतः वस्त्र जाता है, लज्जा का लपेटना नितांत असंभव है। अतः लक्ष्यार्थ से इसका अर्थ 'सहित' या 'युक्त' होगा। इसका एक उदाहरण और लें—

अंग-अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।[२]

यहाँ तरंग का उठना और रूप का पृथ्वी पर चू पड़ना लाक्षणिक प्रयोग है। वास्तव में तरंग तो जल में उठता है और चूने वाली वस्तु तो तरल होती है; यहाँ इसका लक्ष्यार्थ होगा अतिशय सौन्दर्य का बढ़ना।

शुद्धा सारोपा के साथ ही, इन्होंने गौणी सारोपा का भी प्रयोग यथास्थल किया है। गौणी सारोपा का यह छन्द लें—

छबि को सदन मोद मंडित बदन-चन्द,
तृषित चखनि लाल कब धौं दिखायहौ।[३]

यहाँ बदन चंद में गौणी लक्षणा है। मुख और चंद में सादृश्य के कारण आरोप किया गया है। यहाँ तक तो कवि के लाक्षणिक प्रयोग की बात बताई गई, अब किंचित इनकी व्यंजना पर भी विचार कर लेना चाहिए। यद्यपि इन्होंने लक्षणा के व्यापारों का जितना विस्तार किया है, उतना व्यंजना का नहीं, पर यह न समझना चाहिए कि ये ध्वनि और व्यंजना के प्रयोग में अपटु थे। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनके एक छन्द में प्रत्ययगत व्यंजना के चमत्कार का सुन्दर विवेचन किया है—

जाहित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद-कला कुलधारी,
सोभा समूह मई घनआनन्द मूरति रंग-अनंग जिवारी।
जान महा सहजै रिझवार, उदार विलास मैं रास बिहारी,
मेरो मनोरथ हूँ बहियै, अरु हैं मोमनोरथ पूरन कारी।[४]

१. घनानंद कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १
२. वही, छं० सं० २
३. वही
४. घनानन्द कवित्त, पृ० ८४-८५

इस छन्द की अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त मनोरथ में प्रत्ययगत व्यंजना का चमत्कार बताया गया है। इस पंक्ति का आशय यह है कि आपने अपने भक्त अर्जुन के लिए सारथी बनना स्वीकार किया—उनका रथ वहन किया, अतः मेरा भी मनोरथ आप वहन कीजिए (मेरी भी इच्छा की पूर्ति कीजिए)। इसमें 'हूं' शब्द के प्रयोग लालित्य पर विचार करते हुए आचार्य मिश्र कहते हैं—'हूं' अव्यय के द्वारा इसमें प्रत्ययगत व्यंजना का चमत्कार है। इस शब्द से ही अर्जुन की सारी कथा स्वतः आक्षिप्त हो जाती है। इस प्रयोग का विचार घनानन्द कवित्त की भूमिका में भी किया गया है और वहाँ इसे 'पदांश-ध्वनि' का उत्तम प्रयोग बताया गया है।[1]

उपर्युक्त थोड़ी सी विवेचना से स्पष्ट है कि घनानन्द की वाणी में लक्षणा और व्यंजना का अक्षय कोष-विद्यमान है, जिसे मर्मभेदनी दृष्टि ही जानती है, सबके लिए सहज नहीं।

अप्रस्तुत योजना—काव्य में अप्रस्तुत की योजना प्रस्तुत व्यापार को रमणीय, प्रभावशाली, और भावात्मक या तादात्म्य मूलक स्थिति तक प्रमाता को पहुँचा देने के उद्देश्य से की जाती है। पर जो अप्रस्तुतों को प्रस्तुतों के मेल में न रख कर कोरी शास्त्रीय बातों और पांडित्य प्रदर्शन की विशेषताओं को दृष्टि में रख कर ही चला करते हैं, वे भाव तन्मयता की उस स्थिति का निर्माण नहीं कर पाते जिसे देख-सुनकर हृदय झूम उठता और सिर चालन होने लगता है। इस दृष्टि से विचार करने पर रीतिकाव्य धारा के अन्तर्गत रीतिमुक्त एवं स्वच्छन्दता मार्ग के सच्चे पथिक घनानन्द का स्थान सर्वोपरि है। वास्तव में घनानन्द की वाणी के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने प्रस्तुतों की योजना हृदय के गूढ़ भावों को अधिक प्रभावशाली, प्रभविष्णु और संवेद्य बनाने की दृष्टि से ही की है।

सादृश्य के आधार पर काव्य में अप्रस्तुत योजना तीन प्रकार से की जाती है—

१. सादृश्य मूलक, २. साधर्म्य मूलक, ३. प्रभाव साम्य मूलक।

इन्हीं तीनों सादृश्यों के आधार पर कवि कभी शास्त्रीय या परम्परागत

१. घनानन्द कवित्त की भूमिका, पृ० ९

काव्य रूढ़ियों को ग्रहण करके अप्रस्तुत योजना करता है और कभी परम्परा से हट कर नवीन एवं मौलिक अप्रस्तुत रूपों को प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जो अधिक अनुभवी और संवेदनशील होते हैं, उनकी अप्रस्तुत-योजना भी तदनुरूप अधिक हृदयग्राही और मार्मिक प्रभाव डालने वाली होती है। निस्संदेह घनानन्द ऐसे ही कवियों में परिगणित होते हैं जिनमें भावना भेद के अनेक स्तरों और सौन्दर्य के अनेक रूपों के परखने की जबर्दश्त क्षमता थी। अब हम घनानन्द के काव्य में प्राप्त उक्त तीनों प्रकार की अप्रस्तुत योजना की चर्चा करेंगे। पहले सादृश्य मूलक अप्रस्तुत योजना के चमत्कार एवं सौन्दर्य की परख करें—

१. सादृश्य मूलक अप्रस्तुत योजना—इस अप्रस्तुत योजना का आधार रूप और आकार होता है। इस रूप-आकार का उल्लेख डॉ० नगेन्द्र ने भी यों किया है—सादृश्य मूलक अप्रस्तुत का प्रयोग वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के निमित्त किया जाता है।[1] पं० रामदहिनी मिश्र ने इस तथ्य का प्रतिपादन अधिक स्पष्ट शब्दों में किया है—"काव्य के लिए सादृश्य में सौन्दर्य का होना बहुत आवश्यक है। इसी से पंडितराज जगन्नाथ ने उपमा का यह लक्षण लिखा है कि वाच्यार्थ को सुशोभित करने वाले सुन्दर सादृश्य का नाम 'उपमा अलंकार' है। सुन्दरता का अर्थ चमत्कार होना और चमत्कार का अर्थ है वह विशेष प्रकार का आनन्द जो सहृदयों का हृदयाह्लादक होता है। सहृदय ही सुन्दरता का पारखी है।[2] घनानन्द के काव्य में सादृश्य मूलक अप्रस्तुत योजना जहाँ भी मिली है, वहाँ कवि की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, प्रेम की अनाविल व्यंजना उसमें झाँकती सी रहती है। यथा, उत्प्रेक्षा के आधार पर घनानन्द की रूप चेतना का एक प्रकृष्ट एवं सूक्ष्म चित्र निम्नांकित छन्द में देखें—

झलकै अति सुन्दर आनन गौर छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल-कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।[3]

---

१. देव और उनकी कविता—डॉ० नगेन्द्र, पृ० सं० १६३
२. काव्य में अप्रस्तुत योजना—रामदहिन मिश्र, पृ० सं० १६३
३. घनानन्द कवित्त—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २

इसमें नायिका के अंगों में व्याप्त सौन्दर्य की कल्पना कवि ने साम्यमूलक अप्रस्तुत के आधार पर अति कुशलता के साथ की है। उसकी मुस्कराहट की प्रतिबिंबित दीप्ति जब हृदय प्रदेश में विकीर्ण होती है तो ऐसा लगता है मानों सौन्दर्य के पुष्पों की वर्षा हो रही है। यह उपमान परम्परागत उपमानों से सर्वथा मौलिक और नव्य है। इसी प्रकार के रूप साम्य से सम्बन्धित न जाने कितने चित्र घनानन्द के काव्य में बिखरे पड़े हैं, जिन्हें सहृदय देखकर सच्चा रस ग्रहण करते हैं।

२. **साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना**—कवि जब रूप और आकार के साम्य द्वारा अपनी अनुभूति को अधिक संप्रेषणीय एवं संवेदनीय नहीं बना पाता तो वह गुण या धर्म-साम्य का सहारा लेता है। आधुनिक काव्य में साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना का चमत्कार अधिक मिलेगा। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'आधुनिक उपमान' जिसमें लक्षणा का चमत्कार प्रायः वर्तमान रहता है, साधर्म्य मूलक ही होते हैं।[१] इस दृष्टि से घनानन्द के काव्य में रूप साम्य की अपेक्षा साधर्म्य साम्य अधिक मिलता है। साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना करने में उन्होंने अपनी जिस गहराई और सजगता का परिचय दिया, वह दूसरों में शायद ही मिले। यही नहीं, ऐसी योजना के अन्तर्गत उनकी काव्य चेतना का धरातल इतना उदात्त और महान् लक्षित हुआ है कि कभी-कभी उसे देखकर सहृदय पाठक चकित रह जाता है। नमूने के लिए एक छन्द लीजिए—

नेह सौ भोय संजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनंद मूल वियोग निवारति।
भावना थार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति।[२]

इस छंद में अमूर्त्त भावों के लिए जो उपमान प्रस्तुत किये गये हैं वे सब मूर्त्त (स्थूल) हैं। वस्तुतः इनमें रूप साम्य न होकर साधर्म्य साम्य का कलात्मक प्रयास लक्षित होता है। यहाँ हृदय के लिए दीपक, आर्त्त के लिए वर्त्तिका, भावना

१. देव और उनकी कविता—डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६३
२. घनाआनन्द ग्रन्थावाली (सु० हि०)—सं० वि० प्र० मि०, छं० सं० ५०७

के लिए थाल, उल्लास के लिए हाथ और प्रेम के लिए मूर्ति उपमानों की जैसी रमणीय, सूक्ष्म और भाव परक योजना की गई है, वह अपने आप में मौलिक होने के साथ ही अति प्रभावोत्पादक भी है। इस छंद में उपमानों को ऐसे परिवेश में रखा गया है, जहाँ वे भव्य से भव्यतर हो गए हैं और एक अनूठी संवेदना से दीप्त हो उठे हैं।

३. प्रभाव साम्य मूलक अप्रस्तुत योजना—साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना का अधिक सूक्ष्म रूप ही प्रभाव साम्य मूलक अप्रस्तुत योजना मानी जाती है। प्रभाव साम्य और साधर्म्य साम्य में विद्वानों ने कुछ अधिक अन्तर स्वीकार नहीं किया है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो सादृश्य और साधर्म्य के बीच प्रभाव साम्य के छिपे रहने का संकेत किया है।[१] पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस प्रभाव साम्य के महत्व का प्रतिपादन यथाप्रसंग किया है। स्वयं प्रेसकाट ने इस प्रभाव साम्य को नितान्त अनुभूतिगम्य बताया है।[२] घनानन्द ने अपने काव्य में प्रभाव साम्य की योजना प्रायः अन्तर स्पर्श से प्रभावित होकर की है—दूसरे शब्दों में इनके प्रभाव साम्य के अन्तर्गत हृदय पर पड़ने वाले अमिट प्रभाव का चित्र अधिक सूक्ष्म एवं कलात्मक रूप में मिलेगा। उदाहरणार्थ एक ऐसा छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें नायिका के हृदय पर पड़ने वाले सौन्दर्य प्रभाव का कलात्मक विधान अपने आप में अप्रतिम एवं बेजोड़ है—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद पांवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सों मांजिहौं।
जान प्रान प्यारे अंग अंग-रुचि रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भांजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंही बानि देखें सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि रांजिहौं।[३]

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६०७, २००३ का सं०
2. The poetic mind-Prescott, page 217
३. घनआनंद ग्रन्थावली—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३२८

यहां वियोग में विदीर्णमन को इस जगह टूटे घड़ों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भला घड़े और विदीर्ण मन का क्या रूप साम्य, पर कवि ने वियोग व्यथित मन के प्रभाव को अधिक उत्कट बनाने के लिए दरकनि शब्द का सुन्दर प्रयोग किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि घनानन्द ने प्रभाव साम्य मूलक ऐसे-ऐसे अप्रस्तुतों की कल्पना की है जो—अन्यत्र नहीं मिलते। वस्तुतः इन अप्रस्तुतों द्वारा भाव या चेतना को साकार बनाने में, उन्हें रूपायित करने में उन्होंने अपनी जिस प्रौढ़ एवं कलात्मक दृष्टि को व्यक्त किया है, वह सचमुच-श्लाघ्य है।

बिम्ब विधान—जब कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूति, संवेदना, कल्पना एवं भावों को रूपायित कर उन्हें मूर्तमान बना देता है, तब उसकी इस प्रक्रिया को बिम्ब विधान की संज्ञा दी जाती है। इस बिम्ब (Image) की चर्चा पाश्चात्य साहित्य में अधिक हुई है और इन बिम्बों के विधान में उपमानों के भी सहायक होने का उल्लेख हुआ है, पर ये उपमान सर्वत्र सहायक नहीं होते। इसलिए हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० नगेन्द्र ने बिम्ब की परिधि को उपमानों की परिधि से अधिक विस्तृत और व्यापक माना है और इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि बिम्ब विधान के अनेक उपकरणों में से उपमान एक अत्यंत उपयोगी उपकरण है।[1]

बिम्ब-विधान में केवल रूप चेतना ही उभर कर नहीं आती, बल्कि भावों और ऐन्द्रिय अनुभवों का भी बिम्ब प्रस्तुत होता है। घनानन्द के बिम्ब अधिक संवेद्य एवं सूक्ष्म हैं, वे रूप में भी अपनी तरलता और सूक्ष्मता को लपेटे रहते हैं। उनकी बहुत सी ऐसी रचनाएँ मिलेंगी जिनमें भावों का बिम्ब बड़ी ही सजीवता और प्रभविष्णुता के साथ प्रस्तुत हुआ है। डॉ० नगेन्द्र ने रीति काल के उन कवियों की श्लाघा की है जिन्होंने नये उपमानों और बिम्बों को शोध में पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने बिहारी और घनानन्द जैसे कवियों की प्रशंसा इसलिए की है, कि वे अपने काव्य-शिल्प के प्रति अधिक सचेत थे।[2] पर यह निश्चित है कि नूतन बिम्बों की खोज में और नये उपमानों के प्रयोग

---

१. काव्य बिम्ब—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६

२. वही, पृ० ७२

के लिए थाल, उल्लास के लिए हाथ और प्रेम के लिए मूर्ति उपमानों की जैसी रमणीय, सूक्ष्म और भाव परक योजना की गई है, वह अपने आप में मौलिक होने के साथ ही अति प्रभावोत्पादक भी है। इस छंद में उपमानों को ऐसे परिवेश में रखा गया है, जहाँ वे भव्य से भव्यतर हो गए हैं और एक अनूठी संवेदना से दीप्त हो उठे हैं।

३. प्रभाव साम्य मूलक अप्रस्तुत योजना—साधर्म्य मूलक अप्रस्तुत योजना का अधिक सूक्ष्म रूप ही प्रभाव साम्य मूलक अप्रस्तुत योजना मानी जाती है। प्रभाव साम्य और साधर्म्य साम्य में विद्वानों ने कुछ अधिक अन्तर स्वीकार नहीं किया है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो सादृश्य और साधर्म्य के बीच प्रभाव साम्य के छिपे रहने का संकेत किया है।[1] पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस प्रभाव साम्य के महत्व का प्रतिपादन यथाप्रसंग किया है। स्वयं प्रेसकाट ने इस प्रभाव साम्य को नितान्त अनुभूतिगम्य बताया है।[2] घनानन्द ने अपने काव्य में प्रभाव साम्य की योजना प्रायः अन्तर स्पर्श से प्रभावित होकर की है—दूसरे शब्दों में इनके प्रभाव साम्य के अन्तर्गत हृदय पर पड़ने वाले अमिट प्रभाव का चित्र अधिक सूक्ष्म एवं कलात्मक रूप में मिलेगा। उदाहरणार्थ एक ऐसा छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें नायिका के हृदय पर पड़ने वाले सौन्दर्य प्रभाव का कलात्मक विधान अपने आप में अप्रतिम एवं बेजोड़ है—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौं।
रति-रसना-सवाद पांवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सों मांजिहौं।
जान प्रान प्यारे अंग अंग-रुचि रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भांजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंही बानि देखें सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि रांजिहौं।[3]

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६०७, २००३ का सं०
2. The poetic mind-Prescott, page 217
३. घनआनंद ग्रन्थावली—सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३२८

यहां वियोग में विदीर्णमन को इस जगह टूटे घड़ों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भला घड़े और विदीर्ण मन का क्या रूप साम्य, पर कवि ने वियोग व्यथित मन के प्रभाव को अधिक उत्कट बनाने के लिए दरकनि शब्द का सुन्दर प्रयोग किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि घनानन्द ने प्रभाव साम्य मूलक ऐसे-ऐसे अप्रस्तुतों की कल्पना की है जो—अन्यत्र नहीं मिलते। वस्तुतः इन अप्रस्तुतों द्वारा भाव या चेतना को साकार बनाने में, उन्हें रूपायित करने में उन्होंने अपनी जिस प्रौढ़ एवं कलात्मक दृष्टि को व्यक्त किया है, वह सचमुच-श्लाघ्य है।

बिम्ब विधान—जब कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूति, संवेदना, कल्पना एवं भावों को रूपायित कर उन्हें मूर्तमान बना देता है, तब उसकी इस प्रक्रिया को बिम्ब विधान की संज्ञा दी जाती है। इस बिम्ब (Image) की चर्चा पाश्चात्य साहित्य में अधिक हुई है और इन बिम्बों के विधान में उपमानों के भी सहायक होने का उल्लेख हुआ है, पर ये उपमान सर्वत्र सहायक नहीं होते। इसलिए हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० नगेन्द्र ने बिम्ब की परिधि को उपमानों की परिधि से अधिक विस्तृत और व्यापक माना है और इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि बिम्ब विधान के अनेक उपकरणों में से उपमान एक अत्यंत उपयोगी उपकरण है।[१]

बिम्ब-विधान में केवल रूप चेतना ही उभर कर नहीं आती, बल्कि भावों और ऐन्द्रिय अनुभवों का भी बिम्ब प्रस्तुत होता है। घनानन्द के बिम्ब अधिक संवेद्य एवं सूक्ष्म हैं, वे रूप में भी अपनी तरलता और सूक्ष्मता को लपेटे रहते हैं। उनकी बहुत सी ऐसी रचनाएँ मिलेंगी जिनमें भावों का बिम्ब बड़ी ही सजीवता और प्रभविष्णुता के साथ प्रस्तुत हुआ है। डॉ० नगेन्द्र ने रीति काल के उन कवियों की श्लाघा की है जिन्होंने नये उपमानों और बिम्बों की शोध में पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने बिहारी और घनानन्द जैसे कवियों की प्रशंसा इसलिए की है, कि वे अपने काव्य-शिल्प के प्रति अधिक सचेत थे।[२] पर यह निश्चित है कि नूतन बिम्बों की खोज में और नये उपमानों के प्रयोग

१. काव्य बिम्ब—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६
२. वही, पृ० ७२

में घनानन्द ने जैसी दक्षता दिखाई है, वह हमें बिहारी में नहीं मिलती। बिहारी के बिम्बों में रूप-चेतना का प्राधान्य है, पर घनानन्द ने सर्वत्र-रूप चेतना को ही प्रधानता नहीं दी। बल्कि कभी-कभी उन्होंने अनुभूतियों एवं भावों के ऐसे मार्मिक बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, जिनके प्रवाह में मानस प्रवाहित होने लगता है। वियोग-व्यथा की अक्षुण्णता और व्यापकता प्रदर्शित करने के लिए कवि ने एक स्थल पर अक्षय वट बीज को प्रस्तुत किया है। अक्षय-वट वृक्ष कितना बढ़ता है, उसकी जड़ें कितनी दूर तक फैलती हैं और प्रलय में भी वह अपने अस्तित्व को कैसे कायम रखता है। इन सबका जो बिम्ब प्रस्तुत हुआ है, वह अमूर्त्त एवं सूक्ष्म वियोग की अनुभूति को आँखों के सामने प्रत्यक्ष कर देता है। ऐसे ही भावात्मक बिम्बों में कवि की वृत्ति अधिक रमी है। उदाहरण लें—

हम सो हित कै कित कै नित ही चित-बीच बियोगहि बोय चले।
सु अखैवट-बीज लौं फैलि परचौ बनमाली. कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौ रवाय कै रोय चले।[1]

कवि ने परम्परा का अनुसरण करते हुए कभी-कभी चाक्षुष बिम्ब (Visual image) का बड़ा ही मादक और सरस रूप भी प्रस्तुत किया है। संदेह अलंकार के आधार पर निर्मित चाक्षुष बिम्ब का यह नमूना लें—

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहैं अमावस अंग उज्यारी।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल सो पै दृग सीतलता सुखकारी।
कै छबि छायो सिंगार निहारि सुजान तिया तन दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सों पहिरी चुनि सांवरी सारी।[2]

इन थोड़े से चित्रों से स्पष्ट है कि घनानन्द की बिम्ब योजना (Imagery) नितान्त सूक्ष्म, अनुभूति परक और अन्तर्भाव-व्यंजक है।

निष्कर्ष—घनानन्द ने काव्य रूढ़ियों से संग्रस्त उस युग की काव्य-चेतना

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली (सु० हि०)—सं० आ० वि० प्र० मि०, छं० सं० ३६१
२. वही, छं० सं० २३८

के समक्ष अपनी स्वच्छंद वृत्ति से अनुप्राणित होकर जैसा विद्रोही स्वर मुखरित किया था वह वर्षों बाद नये युग की काव्य-चेतना में ही देखने को मिला। आज जब हम समाज की पुरानी मान्यताओं को ठुकरा कर नयी मान्यताओं का संपोषण कर रहे हैं, तो इस दृष्टि से उस युग की शास्त्र-कथित काव्य-मान्यताओं को ठुकरा कर भावना-भेद के अनेक स्तरों और सौन्दर्यानुभूति के अनेक नये आयामों का मार्मिक उद्‌घाटन करने वाले घनानन्द के काव्य का कम साहित्यिक मूल्य नहीं है। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) के जिस व्यापक धरातल पर अपना पदन्यास किया था, वह आज भी एक लोकोत्तर दीप्ति से उद्‌भाषित है।

काव्य खण्ड

काव्य खण्ड

काव्य खण्ड

[illegible]

(क) घनानन्द-कवित्त

लाजनि लपेटी चितवन भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लाल चख-तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं ।।१।।

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै ।।२।।

भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।

---

(१) लपेटी = युक्त, सहित। भेद भाय भरी = अनेक गूढ़ भावों से युक्त। लड़कि = अदा के साथ। निधि = समुद्र। ढुरि = ढलना, निकलना। अनंग-रंग = काम की शोभा। मुरि जानि = मुड़ जाने, घूम जाने।

(२) छके = प्रेम के नशे में चूर। काननि छ्वै = कानों तक फैले विशाल नेत्र। जलजावलि = मोतियों की लड़ें। बनी = शोभित है। द्वै = दो। धर = पृथ्वी।

जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ।।३।।

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समानै।
नीर-सनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़, मीत कै पानैं-परै कौ प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ।।४।।

क्यौं हँसि हेरि हर्‌यौ हियरा,
अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे कों बोलि सुधासने बैननि,
चैननि मैन-निसैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद,
सालति क्यौंहूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी,
इते पै न जानियै कौने पढ़ाई ।।५।।

बिस लै बिसार्‌यौ तन, कै बिसासी आपचार्‌यौ,
जान्यौ हुतौ मन, तै सनेह कछु खेल सो।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीके आहि, असह उदेग दुख से लसो।

---

(३) लौं = तक। तारनि = नक्षत्रों को, आँख की पुतलियाँ। इकतार = लगातार। सोहन = सामने। जोहन = देखने को। आरति = लालसा। गारति = गिराती है।

(४) नीर सनेही = प्रिय जल को। मीत = मित्र, प्रेमी (जल से अभिप्राय है)। पानैं परै = हाथ में पड़ने। जान = सुजान।

(५) हेरि = देखकर। हर्‌यौ हियरा = हृदय को चुराया। हित के = प्रेम करके। चाह = उमंग। मैन निसैन चढ़ाई = काम की सीढ़ी पर चढ़ाया, कामोद्दीप्त किया। सालति = पीड़ित करती है। इत पै = इतने पर।

गये उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयौ आय औचक बियोग बैरो डेल सो।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरें रंक, मानि लीनो मेल सो ।।६।।

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमै सूल-सेलनि सो क्यौंहू न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलैं तौ तब,
अब जिय जात, कहौ धौं कौंन न्याय है।
सुनो है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसें कल पाय है ।।७।।

कन्त रमैं उर अन्तर मैं सु लहै,
नहीं क्यौं सुख रासि निरंतर।
देत रहैं गहें आँगुरी, तेजु
बियोग के तेह तचे परतन्तर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद,
रैनि दिना बिन जान सुतंतर।

---

(६) बिसारयौ = विषाक्त किया। बिसासी = विश्वासघाती। आपचारयौ = मनमानी। जान्यौ हुतौ = समझ रखा था। पजरिबो = जलना। नीके आहि = अच्छा है। विपरीत लक्षणा से बहुत खराब हुआ। असह···सेल सो = उद्वेग का दुख बरछे की भाँति असह्य है। पखेरू = पक्षी। औचक = अचानक। डेल = ढेला। रुचि ही के राजा = मनमानी करने में जो शिरोमणि है, सौन्दर्य के राजा (अतिशय सुन्दर)। होत कहा हेरें = उनके केवल देखने से क्या होता है। मानि···मेल सो = तुम उसे प्रेम करना समझ बैठे।

(७) जक = रट। सूल सेलनि = बर्छी की पीड़ा। काहू = किसी को। कल-पायहै = कष्ट देना। कल = चैन, आराम।

जानैं बेई दिन राति, बखाने तें
जाय परै दिन-राति को अन्तर ।।८।।

ज्यौं बुधि सों सुघराई रचै कोऊ,
सारदा कों कबिताई सिखावै ।
मूरतिवंत महालक्ष्मी-उर
पोत-हरा रचि लै पहिरावै ।
राग बधू-चित चोरन के हित
सोधि-सुधारि कै तानहि गावै ।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद
मो जिय-बौरई-रीति रिझावै ।।६।।

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद
स्वाति पपीहा कौ धावै ।
त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रवि,
मीन पै दीन ह्वै सागर आवै ।
मोसों तुम्हें सुनौ जान कृपा निधि !
नेह निबाहिबो यों छबि पावै ।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर
सु रंकहि लै निज अंक बसावै ।।१०।।

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि
कैसें उराहनो दीजियै जू ।

---

(८) तेह = आँच । तचे = जल गये । परतंतर = परतन्त्र होकर । सुतंतर = स्वतन्त्र । जाय परै अंतर = अन्तर पड़ जाता है ।

(६) सुघराई = चतुराई । मूरतिवंत = मूर्तिमती, प्रत्यक्ष । पोत = काँच की गुरिया । सोधि = विचारपूर्वक । मो ⋯ रीति = मेरे मन के पागलपने की रीति ।

(१०) चाह = इच्छा । त्रसरैनि = पुराणों में उल्लिखित सूर्य की पत्नी का नाम । ऐन = गृह । अपनी ⋯ राचि = अपनी इच्छा से, स्वतः अनुरक्त होकर, प्रसन्न होकर । अंक बसावै = गोद में रखे । रंकहि = दरिद्र व्यक्ति को ।

अब तौ सब सीस चढ़ाय लई,
जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान!
तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा,
पै असीस हमारियौ लीजियै जू॥११॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ,
यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप छटा न सहारि सकै,
यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा,
मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरे मिले मीन-पतंग-दसा कहा,
मो जिय की गति को परसै॥१२॥

तब तौ छबि पीवत जीवत हे,
अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले,
बिललात महादुख-दोष भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना,
सब ही सुख-साज-समाज टरे।

---

(११) बाँट परी सुधि=हमारे हिस्से में सुधि पड़ी है। रावरे भूलनि=आपके हिस्से में भूल। चाड़=प्रबल इच्छा, उत्कंठा।

(१२) मरिबो···गनै=मीन तो मरने में ही सुख का अनुभव करती है। यह=हमारा मन। वह=पतंग। रूप छटा=दीप के सौन्दर्य की दीप्ति। न सहारि सकै=सह नहीं पाता। तेज तवै=प्रिय के सौन्दर्य की तेज-कांति से जलता रहता है। मति आवरी=बुद्धि व्याकुल होकर। थरसै=त्रस्त, भयभीत रहती है।

तब हार पहार से लागत हे,
अब आनि कै बीच पहार परे ।।१३।।

पहलें अपनाय सुजान सनेह सों, क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई ! गहि बाँह न बोरियै जू ।
घनआनँद आपने चातिक कों, गुन-बाँधि लैं, मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिसघोरियै
जू ।।१४।।

रंग लियौ अबलानि के अंग तें,
च्वाय कियौ चित चैन को चोवा ।
और सबै सुख सोंधे सकेलि,
मचाय दियौ घनआनँद ढोवा ।
प्रान अबीरहि फैंट भरे अति,
छाक्यौ फिरै, मति की गति खोवा ।
स्यान सुजान बिना सजनी ? ब्रज,
यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ।।१५।।

---

(१३) हे = थे । हित पोष = प्रेम के पोषण । तोष = संतुष्टि । बिललात = व्याकुल रहते हैं । समाज = समूह । तब···लागत हे = उस समय प्रियतम से आलिंगन करते समय हार पहाड़ से लगते थे—प्रियतम के आलिंगन में गले की माला से जो व्यवधान पड़ता था वह असह्य था । अब आनि···परे = अब हमारे उनके मिलन में पहाड़ ही आकर पड़ गये, काफी अन्तर हो गया ।

(१४) तेह कै = क्रोध करके । तोरियै = तोड़ना । धार-मझार = बीच धारा में । गुन बाँधि लैं = बँधे हुए को । बिसास = विश्वास । रस = आनंद । विष-घोरियै = विषघोलना, नष्ट कर देना ।

(१५) रंग···अंग तें = अबलाओं के शरीर से रंग ले लिया (उनका रंग इसने ले लिया और वे पीली पड़ गईं) । च्वाय = टपका कर । कियौ चित चैन को चोवा = मन के आनन्द को विरह के ताप से टपका कर चोवा बनाया । सोंधे = सुगंधित पदार्थ । सकेलि = इकट्ठा करके । घनआनँद ढोवा = अतिशय आनन्द की ढोवाई मचा दी । फैंट = वस्त्र । बिगोवा = नष्ट करना ।

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै।
अचिरज मई मोहि भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ, पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह समीर की झकोरनि अधार, नेह नीर,
भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ।।१६।।

घनआनँद जीवन मूल सुजान की कौंध नि हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानिए धौं कित छाय रहे, दृग-चातिग प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तो इन थ्यावस हो न, सु क्यौं करि ये अब परसैं।
बदरा बरसैं रितु पावस मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ बरसैं ।।१७।।

सोंधे की बास उसासहि रोकति,
चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल-
अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग बिराग धमार त्यौं धारि सी,
लौटि पर्‌यौ ढँग यौं सबही को।
रंग रचावन जान बिना, घनआनँद
लागत फागुन फीको ।।१८।।

---

(१६) आस ही अकास=आशा रूपी आकाश। अवधि गुनै=अवधि रूपी डोरी। चोपनि=उमंगपूर्वक। ऐंचत=खींचना। दुहेली=दुख दायिनी। गुड़ी=पतंग। इस छंद में मुहावरों की प्रधानता है।

(१७) कौंधनि=चमक। थ्यावस=स्थिरता, धैर्य। हो=था। अब परसैं=उस वर्षा को स्पर्श करें, उसे प्राप्त करें।

(१८) सोंधे=सुगंधित पदार्थ। बास=सुगंध। दाहक=जलाने वाला। गाहक=ग्राहक, लेने वाला। धमार=होली के गीत। धारि=तलवार की

राधे सुजान चितै चित दै,
　हित मै कित कीजति मान-मरोर है।
माखन ते मन कोंवरो है यह,
　बानि न जानति कैसें कठोर है।
साँवरे सों मिलि सोहति जैसी,
　कहा कहियै कहिबे कौं न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद,
　है ब्रजचंद पै तेरो चकोर है ॥१६॥

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
　वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फैंट छोरि बैठौ,
　मोहि वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबे घनौ।
हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसें आई,
　कौन विधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
　ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२०॥

चातिक चित्त कृपा-घनआनँद,
　चोंच को खोंच सु क्यौं करि धारौं।
त्यौं रत्नाकर-दान-समै बुधि-
　जीरन-चोर-कहा लै पसारौं।
पै गुन ताके अनेक लखौं,
　निहचै उर आनि कै एक बिचारौं।

धार। लौटि पर्‌यौ = बदल गया। रचावन = अनुरक्त करना। रंग = प्रेम।

(१६) हित = प्रेम। मान मरोर = मान की ऐंठन। कोंवरो = कोमल। जोर = शक्ति।

(२०) वारे = निछावर हुए। पैंड़ पैंड़ = कदम कदम पर। फैंट = कमर-बंध। ब्यौरो बूझिबे = समाचार पूछना है। झूठ की सचाई छाक्यौ = झूठ बोलने में उसमें सच्चाई है।

कूल बढ़ाय प्रबाह बढ़ै यौं,
कृपा-बल पाय कृपाहि सहारौं ।।२१।।

रसिक रँगीले भली-भाँतिनि छबीले घन—
आनँद रसीले भरे महा सुख सार हैं।
कृपा-धन-धाम स्याम सुंदर सुजान मोद,
मूरति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह को कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि-अधार नंदनंदन उदार हैं ।।२२।।

गोरी बाल थोरी-बैस, लाल पै गुलाल-मूठि,
तानि कै चपल चली आनँद उठान सों।
बायें पानि-घूंघट की गहनि चहनि-ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सों।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सों।

---

(२१) कृपा-घनआनँद = कृपा रूपी आनन्द के बादल की वृष्टि। चोंच की चोंच = चोंच रूपी छोटी झोली में। रत्नाकर = रत्न समूह। बुधि-जीरन-चीर = बुद्धि रूपी पुराना वस्त्र। कूल = नदी का किनारा। सहारौं = सँभाल लूंगा।

(२२) कृपा-धन-धाम = कृपा रूपी धन के आगार हैं। बिना बूझें = बिना कहे ही। रिझवार हैं = प्रसन्न होने वाले हैं। चाह-आलबाल···कलपतरु = अचाह व्यक्ति (जिसकी कामनाएँ पूरी नहीं हुई हैं ऐसे व्यक्ति) की कामना रूपी थाले में कल्प वृक्ष के समान हैं (उसकी समस्त कामनाएँ कल्पवृक्ष की भाँति पूरी करते हैं)। कीरति मयंक प्रेमसागर अपार हैं = भक्तों के यशरूपी चन्द्रमा को देख कर आप का अपार प्रेम सागर उमड़ने लगता है (भक्तों के यश से आप को अपार प्रसन्नता होती है)।

राधे सुजान चितै चित दै,
　　हित मै कित कीजति मान-मरोर है।
माखन ते मन कोंवरो है यह,
　　बानि न जानति कैसें कठोर है।
साँवरे सों मिलि सोहति जैसी,
　　कहा कहियै कहिबे कौं न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद,
　　है ब्रजचंद पै तेरो चकोर है ॥१९॥

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
　　वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फैंट छोरि बैठौ,
　　मोहि वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबे घनौ।
हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसें आई,
　　कौन विधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
　　ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२०॥

चातिक चित्त कृपा-घनआनँद,
　　चोंच को खोंच सु क्यौं करि धारौं।
त्यौं रत्नाकर-दान-समै बुधि-
　　जीरन-चोर-कहा लै पसारौं।
पै गुन ताके अनेक लखौं,
　　निहचै उर आनि कै एक बिचारौं।

धार। लौटि पर्यौ = बदल गया। रचावन = अनुरक्त करना। रंग = प्रेम।

(१९) हित = प्रेम। मान मरोर = मान की ऐंठन। कोंवरो = कोमल। जोर = शक्ति।

(२०) वारे = निछावर हुए। पैंड़ पैंड़ = कदम कदम पर। फैंट = कमर-बंध। ब्यौरो बूझिबे = समाचार पूछना है। झूठ की सचाई छाक्यौ = झूठ बोलने में उसमें सच्चाई है।

कूल बढ़ाय प्रबाह बढ़ै यौं,
कृपा-बल पाय कृपाहि सहारौं ।।२१।।

रसिक रँगीले भली-भाँतिनि छबीले घन—
आनँद रसीले भरे महा सुख सार हैं।
कृपा-धन-धाम स्याम सुंदर सुजान मोद,
मूरति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह को कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि-अधार नंदनंदन उदार हैं।।२२।।

गोरी बाल थोरी-बैस, लाल पै गुलाल-मूठि,
तानि कै चपल चली आनँद उठान सों।
बायें पानि-घूँघट की गहनि चहनि-ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सों।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सों।

---

(२१) कृपा-घनआनँद = कृपा रूपी आनन्द के बादल की बृष्टि। चोंच की खोंच = चोंच रूपी छोटी झोली में। रत्नाकर = रत्न समूह। बुधि-जीरन-चीर = बुद्धि रूपी पुराना वस्त्र। कूल = नदी का किनारा। सहारौं = सँभाल लूंगा।

(२२) कृपा-धन-धाम = कृपा रूपी धन के आगार हैं। बिना बूझें = बिना कहे ही। रिझवार हैं = प्रसन्न होने वाले हैं। चाह-आलबाल···कलपतरु = अचाह व्यक्ति (जिसकी कामनाएँ पूरी नहीं हुई हैं ऐसे व्यक्ति) की कामना रूपी थाले में कल्प वृक्ष के समान हैं (उसकी समस्त कामनाएँ कल्पवृक्ष की भाँति पूरी करते हैं)। कीरति मयंक प्रेमसागर अपार हैं = भक्तों के यशरूपी चन्द्रमा को देख कर आप का अपार प्रेम सागर उमड़ने लगता है (भक्तों के यश से आप को अपार प्रसन्नता होती है)।

मीड़िबे के लेखें कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सों ।।२३।।

घूँघट-ओट तकै तिरछी-
घनआनँद चोट सुघात बनावै ।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर ?
छरा धरि-ढूकति आवै ।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख,
चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै ।
बाल अनूठियै ऊठ गुलाल की,
मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ।।२४।।

देहै गी दान जु ऐहै इतै, नहीं,
पैहै अबै सु किये को सबै फल ।
बाबा दुहाई, सुहाई कहौ जिय,
जानि कै मानि छुटै न कियें छल ।

---

(२३) उठान = उमंग, उल्लास । बैस = उम्र । तानि कै = फेंककर । बायें पानि = बाएँ हाथ से । गहनि = पकड़ना । चहनि = देखना । कोटि ··· दलमलि = करोड़ों बिजलियों के समूह को नष्ट करके (करोड़ों बिजलियों से बढ़ कर चमकने वाली सुन्दरी) । पाय दाय = अवसर पाकर । सयान = चतुराई के साथ । मीड़िबे के लेखें = गुलाल मलने की जगह । कर मीड़िबोई ··· लग्यौ = हाथ मलना (पछताना) ही हाथ लगा । सो ··· हाथ = वह गोपी श्रीकृष्ण के हाथ न लगी (उसे न पा सके) । रह्यो सकुचि = लज्जित होकर । सखान सों = सखाओं के समक्ष ।

(२४) सुघात = दाँव, मौका । बनावै = ढूंढ़ती है । उसारि = निकाल कर । बर = उत्तम, श्रेष्ठ । बरा = हाथ का एक आभूषण । छरा = माला की लड़ी । सुधारि = पहन कर । ढूकति आवै = नजदीक चली आ रही है । कौंधि = चमक कर । चौंधि भरै = दीप्ति युक्त, कांतिपूर्ण । चख = नेत्र । चौकस = सावधानी के साथ । ऊठ = उठान, जवानी की उभार । मूठि = मुट्ठी । मूठि चलावै = जादू करती है ।

एक ही बोल, दै जाहु चली,
झगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नाँव परयौ अबला घनआनँद,
ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ।।२५।।

गोद भरै, बित धाय कै जाय,
धरौ गहि मोद सों माय के आगै।
पेट परै को लखै फल ज्यौं,
निपजे हौ सपूत सुभागनि जागै।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की,
जाति मैं जातैं महापति पागै।
बास दियें को यहै फल है,
घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ।।२६।।

याहि आएँ आवन की आसा उर आय बसै,
चाहै निरबाहै नित हित-कुसरात कौं।
है री वह बैरी घैरी उघर्यौ बिगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गौवै कहा भेद बात कौं।
मधुर-सरूप याहि देखियै अनंदघन,
पोखै जान प्यारे संग रंग-मनजात कौं।

---

(२५) नहीं = अन्यथा, नहीं तो। सुहाई = रुचिकर। जानि = जान बूझ कर। मानि छुटै न कियें छल = तुम्हारे स्वांग से तो हमारा मान समाप्त नहीं हो सकता। एक ही बोल = एक ही बात (असली बात)। बात परै सल = बात समाप्त हो जाय (विवाद खत्म हो जाय)। ग्वैंठति = टेढ़ी करती हो। किते बल = कितनी शक्ति से।

(२६) बित = धन। धाय कै = दौड़ कर। पेट परै = (माँ के) गर्भ में आने का। निपजे हौ = पैदा हुए हो। सपूत = अच्छे पुत्र (व्यंग्य से)। बाँटिहै··· कमाई की = माता तुम्हारी कमाई की बधाई लोगों को बुलाकर बाँटेगी। जातैं = जिससे। पति = सम्मान। बास दियें को = बसाने का। पागै = फैल

साँझ सही साथिनि सँजोगहि सजाय देति,
लाग्यौ रहै गौहन ही प्रात प्रान घात कौं ।।२७।।

पानिप-पूरी खरी निखरी,
रस-रासि निकाई की नीवहिं रोपैं ।
लाज-लड़ी बड़ो सील-गसीलो,
सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं ।
अंजन-अंजित श्री घनआनँद,
मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं ।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन,
देखि ये आँखि न आवति मोपैं ।।२८।।

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति, घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति है ।
जीवन अधार जान-रूप के अधार बिन,
व्याकुल बिकार-भरी खरी सुजरति है ।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी परी-भीर क्यौंहूँ धीर न धरति है ।

जाय, बढ़ जाय ।

(२७) इसमें सन्ध्या की प्रशंसा और प्रभात की निंदा की गई है । याहि = संध्या । चाहै = देखती है। घैरी = बदनामी कराने वाला (प्रभात) । उवर्‌यौ = पैदा हुआ है । बिगोवनि पै = नाश करने के लिए । ओछो = नीच । जरिगयौ = जल जाय । गोवै···बात कौं = भेद की बात को क्या छिपाए । रंग = आनन्द । मनजात = कामदेव । पोखै = पोषण करती है । सही = ठीक, असली । गौहन = पीछे ।

(२८) पानिप पूरी = कांति से युक्त । खरी निखरी = अत्यन्त साफ या धुली हुई । रस-रासि-निकाई = आनन्द राशि और अच्छे गुण । नीवहिं रोपैं = नींव डालती हैं । लाज-लड़ी = लज्जा द्वारा दुलराई गई (लज्जा संवलित) । गसीली = युक्त । लोपैं = हर लेती है । अंजित = आँजी हुई । श्री = शोभा,

देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति है ॥२९॥

आवत ही मन जान सजीवन,
ऐसी गयौ जु करो नहि लौटनि ।
द्यौस कछू न सुहाय सखी,
अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि ।
अंग भये पियरे पट लौं,
मुरझै बिन ढंग अनंग सरौटनि ।
हौ सुचितै घनआनँद पै,
हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३०॥

मो अबला तकि जान ! तुम्हैं बिन,
यौं बल कै बलकै जु बलाहक ।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला,
अरु पौन हूँ दूनो बिदेह ते दाहक ।
चंदमुखी सुनि मंद महातम,
राहु भयौ यह आनि अनाहक ।

कांति । उपमानि हूँ ओपैं = अपने उपमानों की भी शोभा बढ़ाती हैं । न आवति मोपैं = मेरे पास नहीं आतीं ।

(२९) घेर = घिराव । उबरानी = ऊबी हुई । आरति राती = दर्शन की लालसा में अनुरक्त । साधनि = इच्छा । खरी = अतिशय । अतन = काम । जतन = यत्न, उपाय, इलाज । अनखि = क्रुद्ध होकर । अरसानी = अन्यमनस्क, उदास । बीर = सखी । असाध दसा = असाध्य रोग । निपेटनि = भुक्खड़, पेटू । भसमी = आयुर्वेद के अनुसार एक रोग जिसमें जो कुछ भी खाया जाय, सब शीघ्र पच जाता है और भूख बराबर बनी रहती है । लंघन = उपवास ।

(३०) लौटनि = लौटना, वापस आना । करौटनि = करवट । सरौटनि = शिकनें, सिकुड़न । औटनि = ताप ।

प्रान हरौहर है घनआनँद,
लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ।।३१।।

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरैं न मैन आरतैं ।
ऐसे दिन दीन पै दया न आई दई तोहि,
विष-मोयो विषम बियोग-सर मारतैं ।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं यौऽब द्वार तैं ।
जीवन-अधार घन-आनँद उदार महा,
कैसें अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ।।३२।।

कान्ह ! परे बहुतायत मैं,
अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मन-मोहन मोहे कहूँ न,
बिथा बिमनैंन की मानौ कहा तुम ।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै,
हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कों,
घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ।।३३।।

---

(३१) बल के = बलपूर्वक । बलकै = गरजता है । बलाहक = बादल । दूनो बिदेह ते दाहक = कामदेव से दूना जलाता है । अनाहक = व्यर्थ । हरौहर = लूट । गाहक = लूटने वाले, लुटेरे ।

(३२) निबरैं न = समाप्त नहीं हो सकता । मैन-आरतैं = काम की इच्छा । दिन-दीन = दिनोदिन दीन । विषमोयो = विष में डूबा, जहर बुझा ।

(३३) बहुतायत = बहुत सी स्त्रियों के चक्कर में । अकलैन = अकेले की, एक मात्र तुमसे ही प्रेम करने वाली । बेदन = पीड़ा । बिमनैन = उदासीन, दुखित । बौरे = बौराए हुए ।

सुधि होती सुजान ! सनेह की जो,
तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू ।
छिन जाते न बाहिर, जो छल छूटि,
कहूँ हिय भीतर आवते जू ।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं,
गुन भावते जो गुन गावते जू ।
कहियै सु कहा अब मौन भला,
नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३४॥

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं,
बरुनीन रुमाँच ह्वै चोंपनि हैं ।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति,
चाहनि अंक मैं चोपति हैं ।
टगलाय रहीं पल पावड़े कै,
सुचकोर की चोपहि झोंपति हैं ।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी,
तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३५॥

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
नित नित नये हित-फंदनि गसत हो ।

---

(३४) सुधि = ध्यान । छूटि = छोड़कर । जो गुन गावते = यदि प्रेम के गुणों को गाते होते, प्रेम के महत्त्व को समझते होते । गुन भावते = प्रेम के गुण अच्छे लगते । जो हमैं पावते = यदि दूसरे हृदय को ठीक से पहचाना होता ।

(३५) बरुनीन रूमाँच = बरौनी रूपी रोमांच । सुधाधर-मूरति = चन्द्रतुल्य सुन्दर मूर्त्ति । चाहनि अंक = चितवनरूपी छाती में । चोपति = आलिंगन करती हैं । टगलाय रहीं = टकटकी लगाए हुए हैं । चकोर की चोपहि झोंपति हैं = चकोर की उमंग या प्रेम को भी दबा लेती है । बदी = वादा किया । अँखियाँ… माँपति हैं = आँखें मार्ग की ओर निरन्तर लगी रहती हैं, वहाँ से हटती नहीं (दूर तक देखती रहती हैं) ।

प्रान हरौहर है घनआनँद,
लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ।।३१।।

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरैं न मैन आरतैं।
ऐसे दिन दीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-मोयो विषम बियोग-सर मारतैं।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं यौऽब द्वार तैं।
जीवन-अधार घन-आनँद उदार महा,
कैसें अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ।।३२।।

कान्ह ! परे बहुतायत मैं,
अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम।
हौ मन-मोहन मोहे कहूँ न,
बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै,
हाय कछू उर आनौ कहा तुम।
आरतिवंत पपीहन कों,
घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ।।३३।।

---

(३१) बल कै = बलपूर्वक। बलकै = गरजता है। बलाहक = बादल। दूनो बिदेह ते दाहक = कामदेव से दूना जलाता है। अनाहक = व्यर्थ। हरौहर = लूट। गाहक = लूटने वाले, लुटेरे।

(३२) निबरैं न = समाप्त नहीं हो सकता। मैन-आरतैं = काम की इच्छा। दिन-दीन = दिनोदिन दीन। विषमोयो = विष में डूबा, जहर बुझा।

(३३) बहुतायत = बहुत सी स्त्रियों के चक्कर में। अकलैन = अकेले की, एक मात्र तुमसे ही प्रेम करने वाली। बेदन = पीड़ा। बिमनैन = उदासीन, दुखित। बौरे = बौराए हुए।

सुधि होती सुजान ! सनेह की जो,
तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहिर, जौ छल छूटि,
कहूँ हिय भीतर आवते जू।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं,
गुन भावते जौ गुन गावते जू।
कहिये सु कहा अब मौन भला,
नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ।।३४।।

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं,
बरुनीन रुमाँच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति,
चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टगलाय रहीं पल पावड़े के,
सुचकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी,
तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ।।३५।।

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
नित नित नये हित-फंदनि गसत हौ।

---

(३४) सुधि = ध्यान। छूटि = छोड़कर। जौ गुन गावते = यदि प्रेम के गुणों को गाते होते, प्रेम के महत्त्व को समझते होते। गुन भावते = प्रेम के गुण अच्छे लगते। जौ हमैं पावते = यदि दूसरे हृदय को ठीक से पहचाना होता।

(३५) बरुनीन रूमाँच = बरौनी रूपी रोमांच। सुधाधर-मूरति = चन्द्रतुल्य सुन्दर मूर्त्ति। चाहनि अंक = चितवनरूपी छाती में। चाँपति = आलिंगन करती हैं। टगलाय रहीं = टकटकी लगाए हुए हैं। चकोर की चोपहि झाँपति हैं = चकोर की उमंग या प्रेम को भी दबा लेती हैं। बदी = वादा किया। अँखियाँ··· माँपति हैं = आँखें मार्ग की ओर निरन्तर लगी रहती हैं, वहाँ से हटती नहीं (दूर तक देखती रहती हैं)।

दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे ! भलैं ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरें अनंदघन,
कितहू उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥५०॥

राति-द्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै विचारो जीव,
कछु न बसाति यौं उपाय बल हारे की।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहे पनधारे की।
हेत-खेत धूरि चूर चूर ह्वै मिलैंगो, तब,
चलैगी कहानी-घनआनँद तिहारे की ॥५३॥

बिकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हूँ लहकि बहकि यौं जर्यौ करै।

---

(५०) गसत हौ = फँसाते हो। भलैं ही = अच्छी प्रकार। गति सुमिरें = तुम्हारी बातों को याद करके। कितहू उघरि = कहीं तो उदासीन होकर, वहाँ से हट कर। कहूँ घुरि कै = कहीं घुल कर, पिघल कर। रसत हौ = रस वृष्टि करते हो। उजरनि = उजाड़, उदासीनता। सुबस = अच्छी तरह आबाद। सुदेश = सुन्दर देश। भावते = प्रियतम।

(५३) कटक = सेना। बजमारे = वज्र से मारा हुआ (स्त्रियों की गाली)। औचक = अचानक। अकेलो कै = अलग करके। बसाति = वश। उपाय-बल-हारे = उपाय-बल से रहित, निरुपाय। लागौ न गुहार = (मुहावरा) रक्षा के लिए उसकी पुकार न सुनेंगे। जुहार = अन्तिम प्रणाम या नमस्कार करके (विदा होकर)। जूझिहै = मर मिटेगा। गहे = पकड़े हुए। पनधारे = प्रतिज्ञा

जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा निति कूकनि कर्‌यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्‌यौ सो बन बीथिन रर्‌यौ करै।
बूदैं न परति मेरे जान जान प्यारी ! तेरे
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्‌यौ करै ।।५७।।

अधिक बधिक तें सुजान ! रीति रावरी है,
कपट चुगा दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महाविषम-दया छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अन्तर-कथा छुरी।
कैसें आसा द्रुम पै बसेरो लहै प्रान खग,
बनक निकाई घनआनँद नई जुरी ।।६३।।

निस-द्यौस भरी उर माँझ खरी,
छबि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे,
ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की।
चट दै कटि पै बढ़ि प्रान गए,
गति सों मति मैं अवगाहनि की।

धारण करने की। हेत-खेत = प्रेम रूपी युद्ध के मैदान में। तिहारे की = तुम्हारे व्यवहार की।

(५७) लहकि = चमककर। बहकि = भटककर। अथिर = चंचल। बीथिन = गलियों में। बिडर्‌यौ = दुख का मारा। रर्‌यौ करै = रटता रहता है।

(६३) निपट करौ बुरी = अतिशय बुरा व्यवहार करते हो। गुननि = गुणों द्वारा, रस्सी से। कपट चुगो = कपट रूपी चारा। निपाँख = पंख रहित।

घनआनँद जान लखी जब तें,
जक लागियै मोहिं कराहनि की ।।६६।।

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बीरी,
तोसो और कौन, मनै ढरकौहीं बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान घन,
आनँद निधान, सुखदान दुखियानि दै ।
जान उजियारे गुन-कारे अन्त मोहीं प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै ।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हाहा ! नेकु आनि दै ।।७०।।

अति सूधो सनेह को मारग,
है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ,
झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ,
यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं ।

बनक = रूप, शोभा, बन से संबंधित (बन की) । निकाई = सुन्दरता । जुरी = जुड़ गई, एकत्रित हो गई ।

(६६) द्यौस = दिन । खरी छवि = बढ़िया शोभा । रंग भरी = कांतियुक्त । मुरि चाहनि की = मुड़कर मेरी ओर देखने की । तकि…त्यौं = देख कर मुड़ने की उस मुद्रा की ओर । चख ढोर रहे = नेत्र पीछे-पीछे लग गए । ढरि गो = ढल गया । ढोरनि = ढर्रा, ढंग । बाहनि = नाली के जल के बहने की भाँति (जैसे पानी नाली में बह जाता है, वैसे मन भी ढल कर उधर ही बह गया—चला गया) । चट दें, = शीघ्रता देकर, फुर्तीला बनाकर । गति सों = अदा के साथ । मति…अवगाहनि की = बुद्धि में डूबने के भय से । जक = रट ।

(७०) बीर = भाई । तेरो…गौन = तुम्हारा गमन सर्वत्र है, तुम सब जगह जाते हो । बीरी = बीड़ा उठाने वाला । मनै…दै = अपने मन को द्रवित होने

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।८२।।

करुवो मधुर लागै वाको विष अंग भएँ,
याहि देखे रसहू मैं कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही तें बाढ़त बिकार तन,
यह सरवंग आनि प्रानिनि गसति है।
सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासों कोटि गुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिं डाहनि डसति है ।।८३।।

कारी-कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूक कूक अबही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े पड़े पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यौंही,
चातक ! घातक त्यौंही तूहू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रानजीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेलो सब घेरो दल जोरि लै।

वाली आदत दे दे (सिखा दे)। जान = सुजान। उजियारे = कांतिमान। गुन-कारे = अतिशय गुणी। अन्त = अन्यत्र। मोही = मोहित हो गए हैं, लुभा गए हैं। अमोही = कठोर। बैठे पीठि पहिचानि दै = मेरी पहचान को पीठ दे बैठे (मुझे भूल गए)। मूरि = संजीवनी बूटी।

(८२) सूधो = ऋजु, सरल। नेकु = थोड़ा भी। सयानप = चालाकी। बाँक = वक्रता। आपनपो = अहंभाव। झझकें = संकोच दिखाते हैं। निसांक = निःशंक। आँक = संकल्प, चिह्न। कौन धौं···पढ़े हौ = कैसी शिक्षा पाई है। मन = हृदय, चालीस सेर। छटाँक = सेर का सोलहवाँ भाग, छटाँक का उलटा कटाक्ष (आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार)।

(८३) वाको = उसका (सर्पिणी का)। अंग भएँ = अंग में, जान पर। लहरि सरसति है = विष का दौरा बढ़ता है। बिसारी = विषैली।

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन,
जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताहि के चारु चरित्र विचित्रनि,
यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसे हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन,
कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान, अजान लौं,
टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥९७॥

आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौलौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै।
मौनहू सों देखिहौं, कितक पन पालिहौ जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद ! यौं मोहि तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरे कौन धौं मलोलि है।
रुई दियें रहौगे कहा लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥१०४॥

रूप उजियारे जान ! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महातमैं।

---

(९७) पन = प्रण। जा मधि = जिस हृदय में। सोधि = खोज करके। सुधारि = सुधार करके, शुद्ध करके। लेख्यौ = अंकित किया है। पचि = कष्ट उठाकर, अति परिश्रमपूर्वक। रचि राखि = बनाया गया है। बिसेख्यौ = विशेष-रूपेण। हियो-हित-पत्र = हृदयरूपी प्रेम पत्र। आन = अन्य। अवरेख्यौ = लिखा। टूक कियौ = फाड़ डाला।

(१०४) आनाकानी आरसी = आनाकानी रूपी दर्पण (सुनकर न ध्यान देना)। त्यौं = तरफ, ओर। मौनहू···देखिहौं = मौन रखकर ही देखूँगी। कूक भरी मूकता = मूकता से युक्त कुछ (पुकार)। बुलाय = बुलाकर। पैज = प्रतिज्ञा। जानियैगी = मालूम पड़ेगा। टेक टरे = प्रतिज्ञा भंग होने पर। कौन

सुखद सुधा तें हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं।
सुन्दर सुदेस आँखें बहुर्‍यौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हियें रमैं।
ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥१०६॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति जालनि जगत है।
अमित कलानि ऐन, रैन द्योस एक रस,
केस - तम - संग - रंग - राँचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी ! घनआनँद तें दूनौ दिपै,
लोचन - चकोरनि सों चोपनि खगत है।
नीठि-दीठि परे खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगें चन्द्रमा कलंकी सों लगत है ॥११४॥

परकाजहि देह कों धारि फिरौ,
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ,
सब ही विधि सज्जनता सरसौ।

धौं मलोलि है = कौन पछताएगा (तुम अथवा मैं)। रुई दिये रहोगे = कान बन्द किए रहोगे। बहरायबे = बहलाने को।

(१०६) रूप-उजियारे = सौन्दर्य के प्रकाश से युक्त, सुन्दरता का प्रकाश करने वाले। बिरह महातमैं = बिरह रूपी घने अंधकार में। उदेग से जमैं = उद्वेग सदृश यम को। सुखद सुधा तें = सुख देने वाली अमृत से भी बढ़कर। घरी भाग उघरी = खुले भाग्य वाली घड़ी, सुन्दर घड़ी। सुरस = आनंद, जल। हरी = हरी-भरी, आनंदित।

(११४) अपूरब = अपूर्व, जो पूर्व देश से न निकलता हो। सुधाधर = चन्द्रमा, सुधा को धारणा करने वाला ओष्ठ। मित्र = नाम, सूर्य। कलानि ऐन =

घनआनँद जीवन - दायक हौ,
कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अँसुवानहि लै बरसौ ॥१२८॥

सावन आगम हेरि सखी !
मन भावन-आवन चोप बिसेखी।
छाए कहूँ घनआनँद जान,
सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी।
बूदैं लगैं सब अंग दगैं,
उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सो लागति आगि सुनी ही,
पानी तैं लागति आँखिन देखी ॥१३२॥

हम सों हित कै कित कौं हित ही,
चित बीच बियोगहिं बोय चले।

कलाओं का भाण्डार। रंग राचनि = रँग में रचना, शोभित होता। चोपनि = उल्लास, उमंग। खगत है = मिल जाता है। नीठि = मुश्किल से। खरकत = खटकता है।

(१२८) परजन्य = बादल (सं० पर्जन्य), दूसरे के लिए। जथारथ = जैसा तुम्हारे नाम का अर्थ है (यथा नामः तथा गुणः के अनुसार)। निधि····करौ = तुम समुद्र के खारे जल को अमृत के समान मीठा बना देते हो। सब ही विधि = सभी प्रकार से। सज्जनता सरसौ = सज्जनता के गुणों को बढ़ाते हो, फैलाते हो। जीवन = प्राण, जल। बिसासी = विश्वासघाती। हिये परसौ = हृदय में अनुभव करो।

(१३२) चोप-बिसेखी = विशेष उमंग पैदा हो गई। सम्हारि = सँभाल, देख भाल। ठौर = एवज में, जगह। भूलनि = विस्मरण, भूलना। लेखी = (ब्रह्मा ने) लिख दिया। दगैं = जलने लगते हैं। उलटी गति = विपरीत दशा। सुनी ही = सुना था।

सु अखैबट-बीज लौं फैलि पर्‌यौ,
बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनंद छाय बितान तन्यौ,
हम ताप कै आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय,
सुजान ज्यौ र्‌वाय कै रोय चले ।।१३३।।

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे ! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अन्तर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न हो हमारें तातें,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ।।१४४।।

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौं।
रति-रसना-सवाद पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों मांजिहौं।
जान प्रान प्यारे अंग अंग-रुचि रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भांजिहौं।

---

(१३३) हित के = प्रेम करके। कितकौं = कहाँ, किधर। हित ही = प्रेम से। अखैबट = अक्षयवट वृक्ष (प्रलय काल में भी नष्ट न होने वाला वृक्ष)। बन-माली = श्रीकृष्ण। समोय चले = अनुरक्त होकर चल पड़े। छाय बितान तन्यौ = छाकर, फैलकर शामियाना की भाँति तन गया है। हम ताप के आतप खोय चले = ताप की गरमी से नष्ट होते जा रहे हैं। ज्यौ र्‌वाय के रोय चले = मेरे प्राण दूसरों को रुला कर स्वयं भी रोकर चले जा रहे हैं।

(१४४) गतिनि = दशा। थकनि मैं···जाति = रुकने में भी चली जा रही

कब घनआनँद ढरौंही बानि देखें सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजिहौं ।।१४६।।

जा हित मात को नाम जसोदा,
सुबंस को चंद कला-कुलधारी ।
सोभा-समूह मई घनआनँद,
मूरति रंग-अनंग-जिवारी ।
जान महा, सहजै रिझवार,
उदार, बिलास मैं रास विहारी ।
मेरो मनोरथ हू बहियै,
अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ।।१४८।।

हूँ (थकने में रुकती नहीं अतिशय गति शून्य जैसी दशा हो जाती है)। ढकी उघरति = छिपी हुई प्रकट हो जाती है। थिर = स्थिर, जड़। चर = चल। कल न परति = चैन नहीं मिलता। कहूँ…होय = कहीं चैन मिलता हो तो मिले। परनि परी हौं = ऐसी स्थिति में पड़ गई हूँ। जानि…न परति है = मालूम नहीं पड़ता। क्यौं = कैसे। अरति है = अड़ती है। भूलनि = भूलना। चिन्हारि = पहचान। हो = हे प्रियतम। बिसरनि…बिसरति है = आपका भूलना मुझे भी भुला देता है।

(१४६) मूरति सिंगार = शृंगार की मूर्ति श्रीकृष्ण (शृंगार का रंग कवि परम्परा में श्याम माना गया है, अतः यहाँ उसमें अंजन की बड़ी सटीक कल्पना की गई है)। दीठि लालसा के…आंजिहौं = देखने की लालसा रूपी नेत्रों में अंजन की तरह लगाऊँगी (अपनी लालसा को पूरी करूँगी)। रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी = प्रेम रूपी जिह्वा के आनन्द रूप पायंदाज को पवित्र करने वाले प्रिय के चरण अर्थात् प्रेमानन्द को बढ़ाने वाले चरण। कपोलनि सों मांजिहौं = कपोलों से साफ करूँगी। रुचि = सौन्दर्य। अनंग-दुख = काम पीड़ा। भांजिहौं = नष्ट करूँगी, दूर करूँगी। ढरौंही बानि = पिघलने (दया करने) का स्वभाव। मन-घट = मन रूपी घड़ा। दरकनि = टूटा अंश। सुठि = अच्छी तरह। रांजिहौं = जोड़ूँगी।

(१४८) सुबंस…कुलधारी = जिस कृष्ण के कारण कुल का नाम चंद्र कलाओं

मग हेरत दीठि हिराय गई,
जब तें तुम आवनि औधि बदी।
बरसौ कितहूँ घनआनँद प्यारे,
पै बाढ़ति है इत सोच नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि,
च्वावत आँसुनि मैन-मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान,
बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।।१६३।।

अन्तर हौ किधौं अन्त रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं।
जो घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं।।१६५।।

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत,
सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात सरूप अनूप अरूप है,
भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो,
है क्षमता सब ठौर बिसेखि लै।

को धारण करने वाला पड़ा (यदुवंश से चंद्रवंश हुआ)। जिवारी = उत्पन्न करने वाला।

(१६३) दीठि···गई = दृष्टि की ज्योति नष्ट हो गई। औटि = औटा कर, गरम करके। मैन = कामदेव। मदी = शराब। बहीर = सेना की सामग्री। बैस = उम्र। जाति लदी (मुहा०) = बीती जा रही है, समाप्त होती जा रही है।

(१६५) अन्तर = हृदय। अन्त = अन्यत्र। अभागनि भीरौं = अभाग्य से भिड़ूँ। अकि = अथवा। का बिधि = किस प्रकार। धीरौं = धैर्य दूँ। पीरौं = पीड़ित करती रहूँ। चीरौं = फाड़ूँ।

नैननि-काननि-बीच बसे,
घनआनँद मौन-बखान सुदेखि लै ।।१९९।।
तीछन ईछन बान बखान सो पैनी,
दसानि लै सान चढ़ावत ।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप,
मायल घायल चोप चढ़ावत ।
यौं घनआनँद छावत भावत,
जान सजीवन ओर तें आवत ।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत,
मोंहि तौ मेरे कबित्त बनावत ।।२०६।।
रति-साँचे ढरी अछवाई-भरी-पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै ।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुखान सों लोभी-खरो रस झूमि खगै ।
घनआनँद एड़िन आनि भिड़ै तखानि तरे तें भरै न डगै ।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायन लागि न हाथ लगै ।।२२६।।

---

(१९९) आँखिन मूँदिबो = आँखों का बन्द करना । बात दिखावत = वाणी ही बतलाती है । सोवनि जागनि = सोना और जगना । पेखि लै = समझ ले । बात सरूप = वाणी का रूप । अरूप = सूक्ष्म । अलेखहि = अलक्ष्य (ईश्वर) । लेखि लै = समझ ले । बात की बात = वाणी की चर्चा । सुबात = अच्छी बात । बिसेखि लै = अच्छी तरह जान ले । नैननि काननि = नेत्र रूप कानों में । बखान = कथन ।

(२०६) तीछन···बान = तीक्ष्ण नेत्र रूपी बाण, प्रिय के तीक्ष्ण नेत्र रूपी बाण के सदृश मेरे कवित्त । बखान = बखाने जाते हैं, कहे जाते हैं । सो पैनी दसानि = वे प्रेम की तीव्र दशाओं को । लै सान चढ़ावत = लेकर शाण पर चढ़ा देते हैं, उन्हें और तीव्रतर बना देते हैं । प्रानन प्यारे = ये कवित्त प्रियतम को प्राणों से अधिक प्रिय हैं । भरे अति पानिप = अत्यन्त कांति से युक्त हैं । मायल = प्रवृत्त । चोप चढ़ावत = और उत्साह वर्धन करते हैं । लोग = रीति में बँध कर काव्य-रचना करने वाले अन्य कवि ।

(२२६) रति साँचे ढरी = रति के साँचे में ढली हुई । अछवाई = सुन्दरता ।

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई तामैं,
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है।
अंग-अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अन्त है।
मोहन-मधुप क्यों न लटू ह्वै लुभाव भटू !
प्रीति को तिलक भाल धरे भगवंत है।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसन्त है ।।२२९।।

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन पाट, पुही सु जुही अभिलाषी।
नीके सुभाय के रंग भरी हित, जोति खरी न परैं कछु भाखी।
चाह लैं बाँधी दै प्रीति की गाँठि, सु है घनआनँद जोबन साखी।
नैननि-पानि बिराजति जान जू, रावरे रूप अनूप की राखी ।।२४१।।

उर-भौन में मौन को घूँघट कै,
दुरि-बैठी बिराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सों,
सु लसैं हुलसैं रस-रूप-मनी।
रसना अलि कान-गली मधि ह्वै,
पधरावति लै चित-सेज-ठनी।

पिंडुरीन = पैर के ऊपरी पीछे का भाग जो मांसल होता है। घूमि = मस्त होकर। घुरै = घुलता है। मुखा = एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारों ओर का घेरा। खगै = लीन हो जाता है। भिड़ै = चिपक जाता है। भरै = समय बिताता है। न डगै = भागता नहीं।

(२२९) बैस = उम्र। तरुनाई = तरुणावस्था, वृक्षों की दशा। उलहत = उमंगित होती है। मदन = कामदेव, हाथी या बकुल का वृक्ष। मैमंत = मस्त। भटू = सखी। तिलक = टीका, एक वृक्ष जो बसन्त में हरा-भरा होता है।

(२४१) पानिप-मोती = आँखों की कांति रूपी मोती। गुन-पाट = रेशमी धागे। पुही = गूँथा। नैनन्नि पानि = नेत्र रूपी हाथ।

घनआनँद बूझनि-अंक बसै,
बिलसै रिझवार सुजान-धनी ।।२७४।।

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ,
अरु मौन ही सों कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही,
उर-गाँठि त्यौं अन्तर खोलति है।
रिस-संग महा रस रंग बढ़्यौ,
जड़ताइयै गौहनि डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हिये,
कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ।।२८७।।

चाहत ही रीझि लालसानि भीजि सुख सीझि,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनि-घोस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौंड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं।

---

(२७४) बात बनी = वाणी रूपी दुल्हन । पदारथ = रत्न, काव्य शक्तियाँ (लक्षणा व्यंजनादि) । भूषन = आभूषण, अलंकार । रस = नव रस, प्रेम । पध-रावति = ले आती है । चित्त सेज = चित्त रूपी शय्या पर । ठनी = सज्जित । बूझनि-अंक = बुद्धि की गोद में । धनी = प्रियतम ।

(२८७) अनमानिबोई = न मानने को, अस्वीकार करने को । मौन ही सों ···बोलति है = मौन द्वारा ही अपने भाव व्यक्त करती है । ननिहारनि = न देखना । उर-गाँठि त्यौं = हृदय की गाँठ की ओर । अन्तर खोलति = अपने हृदय को खोलती है (हृदय की गाँठ में ही तुम्हारा मन लगा है) । रिस संग = क्रोध या मान के साथ, क्रोध या मान करने में । रस रंग बढ़्यौ = आनन्द और प्रेम बढ़ता है । जड़ताइयै गौहनि डोलति = जड़ता के पीछे-पीछे घूमती है (जड़ता का ही अनुसरण करती है) । कितकौ = कितना । फिरि बैठि = मुँह घुमाकर (पीठ फेर कर) बैठने पर भी । कलोलति है = कल्लोल करती है, क्रीड़ा करती है ।

माधुरी-निधान प्रान-ज्यारी जान प्यारी तेरो,
रूप-रस चाखैं आँखैं मधुमाखी ह्वै गईं ।।३०५।।

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, बिचार,
बापुरो हहरि बारही तें फिरि आयो है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा, जिन्हैं देखें सरसायो है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायो है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायो है।।३१०।।

डगमगी डगनि धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछो बनमाल की।
सुन्दर बदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी-चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकसे औचक आय,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम-रोम आनँद के घन छाय,
बसो मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की।।३६१।।

---

(३०५) चाहत ही = देखते ही। ह्वै गईं = तन्मय हो गईं। पन = प्रण, प्रतिज्ञा। हित = प्रेम। कनौड़ी = उपकृत। पिछौंड़ी = पीछे की तरफ। ज्यारी = जिलाने वाली।

(३१०) वारही तें = इस किनारे से। बापुरो = बेचारा। हहरि = घबरा-कर। अवगाहैं = स्नान करते हैं। सरसायो है = बढ़ता रहता है। पूरि = बाढ़, प्रवाह।

(३६१) डगमगी = डगमगाते हुए। डगनि = कदम। धरनि = विन्यास, रखना। ढरनि = हिलना। कोरिक = करोड़ों। औचक आय = अचानक आकर। अटक भटक = हड़बड़ाहट, शीघ्रता।

जाके उर बसी रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीको कैसें करि लागि है।
चखनि चषक पूरि पियो जिन रूप-रस,
कैसें सो गरल सनी सोखनि सों पागि है।
आनँद को घन स्याम सुंदर सजल अंग,
छाँड़ि, धूम धूँधरि सों कैसें कोऊ रागि है।
ये तो नैन वाही को बदन हेरें सोरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यों आगि है ।।३६३।।

मन पारद कूप लौं रूप चहैं उमहै सु रहै नहिं जेतौ गहौं।
गुन गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूक्त सहौं।
घनआनँद चेटक-धूम मैं प्रान घुटैं न घुटै गति कासों कहौं।
उर आवति यों छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ।।४२१।।

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगौ जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जे सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ।।४३८।।

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियो जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।
उघरि नचाय आपु चाप मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।

---

(३६३) रसमसी = रसयुक्त । चषक = प्याला। रस = अमृत, आनंद। धूम धूंधरि = धुएँ का अंधकार। रागि है = अनुरक्त होगा।

(४२१) पारद = पारा। कूप = कुप्पी, काँच की शीशी जिससे पारा उड़ाया जाता है। गाड़नि = गड्ढा। चेटक = जादू। रूप = सौन्दर्य, चाँदी।

(४३८) रूप चुगो = सौन्दर्य रूपी चारा। गुन = गुण, डोरी। हतिये = मारना। औधि-दिवाकर = अवधि रूपी सूर्य। आथन = अस्त होना।

तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तें गरे गाँठि-सी घुरति है।
कैसैं घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिखर की परेखनि मुरति है ।।४५३।।

साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तबही सबनि तजी, अब हौं कहा तजौं।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
यों ही इन काज, लाज बिन हौं खरी लजौं।
ऐसी कै बिसारी, गौं तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौं।
कौन बिधि कीजै कैसें जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं ।।४७०।।

(४५३) जान = सुजान। गुननि = गुणों में, डोरी में। उघरि = खुलकर। रचाय = अनुरक्त करके। ढीले = शिथिल, उदासीन। गाँठि सी-घुरति = गाँठ जैसी कस जाती है। परेखनि = पछतावा। लिखर = लेखक।

(४७०) ताकत तुम्हैं = तुम्हारे देखते-देखते। खरी = अतिशय। गौं = घात, चाल। ढरौ = कृपा करो। भाजत = भागते हो। भजौं = भजती हूँ।

(ख) सुजानहित

रूप विधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभौ भयौ घनआनँद हैं नितही पल-पाट उघारे।
टारें टरैं नहिं तारे कहूँ सु लगे मन मोहन-मोह के तारे ।।१।।

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँजोग वियोग धौं आहि! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तबही जब होहु घरीकहू आप तें न्यारे ।।२।।

सीस लाय, दृग छ्वाय, हियै पै बसाय राखौं,
एते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं।
हेरि हेरि चूमि-चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सों मंजन कियौ करौं।
केलि-कला-कंदिर, बिलास-निधि-मंदिर ये,
इनही के बल हौं मनोज-सिंधु कों तरौं।
यातैं घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं ।।३।।

---

(१) अनुराग छकी = प्रेम के नशे में चूर। पल-पाट = पलकों का दरवाजा। उघारे = खोले रहती है। तारे = पुतलियाँ। मोह के तारे = मोह रूपी ताले।

(२) मो गति = मेरी दशा। बूझि परै = समझ में आ सकती है। आप तें न्यारे = अपने को अपने से पृथक् कर लो।

(३) एते मान = इतना अधिक। मान = श्रद्धा, सम्मान। घूमि = मस्त होकर। कंदिर = माधुरी युक्त। मनोज सिंधु = काम-सागर। मंजन कियौ करौं = रगड़ा करें।

नेह निधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है बिपरीत महा घनआनँद अंबर तैं धर को झरलाई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ।।४।।

नेह सों भोय सँजोय धरी हिय-दीप,
दसा जु भरी अति आरति।
रूप उज्यारे अजू बृजमोहन,
सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं,
घनआनँद, भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि,
यों हित-मूरति हेरि उतारति ।।५।।

अंग-अंग-आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चतौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम छवि-हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यों प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।

---

(४) सींचति ही = सीचती थी। हियरा सियराई = हृदय शीतल हो जाता था। अंबर तैं = आकाश से। धर = पृथ्वी। झर = ज्वाला, लपट। अगिलाई = आग की ज्वाला।

(५) नेह = प्रेम; घृत या तेल। भोय = भिगोकर, डुबा कर। सँजोय = जला कर। हिय-दीप = हृदयरूपी दीपक। दसा = अवस्था, बत्ती। सौंहनि = सामने। निवारति = दूर करती है। भावना-थार = भावना रूपी थाल को। हुलास के हाथनि = उल्लास या उमंगरूपी हाथों में। हित मूरति = प्रेमरूपी

रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी।
अकि धौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ।।६।।

हाहा करि हारी न निहारी रूखियै महा री,
मोहू सों चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ।
प्रान पति आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावैं न धरैयै नाँवैं ऐसियौं कहाय हूँ।
राकानिसि आली ब्याली भई घन आनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंद मुखहूँ ।।७।।

मूरति। भावना···उतारति = भावनाओं की उमंग में प्रेम का पोषण करती रहती है। प्रेमार्चना का यह भव्य एवं सूक्ष्म चित्र साङ्ग रूपक द्वारा निर्मित हुआ है।

(६) द्रवित = पिघलकर। स्रवित = बहकर। सच लोनी = इकट्ठा कर ली। सौंज = सामग्री। रंगनि घनेरे = बहुत से रंगों की। रसाल = सुंदर। प्रवाह = आँसुओं के प्रवाह से तात्पर्य है (आँसुओं से युक्त नेत्र)। ऊलट = विपरीतता (प्रवाह पर चित्र बनाना एक विपरीत वस्तु है)। अनेरे = विलक्षण, व्यापार। रूप को चरित्र = प्रिय के सौन्दर्य की विशेषता है। चित-चितेरे = चित्त रूपी चित्रकार। अकि = अथवा।

(७) हाहा करि = विनती करके। न निहारी = नहीं देखा। रूखियै = नीरस। चिन्हारी = पहचान। तनकौ = थोड़ा भी। अरहि = हठ को। पकरि = पकड़कर, ग्रहण करके। हूँ = हाँ। नावैं न धरैयै = बदनामी मत कराओ। आरति = वेदना, पीड़ा। नाँव ऐसियौं कहाय हूँ = ऐसे नाम कहलाकर, नामवाली होकर। राका-निसि = पूर्णिमा की रात। ब्याली = सर्पिणी। ढरि चल्यौ = ढूब चला। न ढरी = द्रवित हुई।

बहुत दिनान के अवधि आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौ।
कहि कहि आवन सँदेसो मन भावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौ।
झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौ।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ ॥८॥

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहि आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥९॥

पहले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।

---

(८) बहुत दिनानि के = बहुत दिनों के (बहुत समय से)। अवधि आस-पास परे = आपकी अवधि की आशा के पाश (जाल) में पड़े हुए हैं। खरे अर-बरनि भरे हैं = अतिशय हड़बड़ाहट (जल्दबाजी) से युक्त हैं। गहि गहि राखति ही = बलात् पकड़-पकड़ कर रखती थी। पत्यानि = विश्वास। निदान = अन्त में। घिरत = रुकते हैं। अधर लगे हैं आनि = ये प्राण आकर होठों पर लग गये हैं।

(९) अघानि = तृप्ति। आनि = सौगन्ध। हुतौ = था। वार्‌यौ = निछावर कर दिया। सहारियै = सहारा दीजिए।

घन आनँद अपने चातिक कों गुन-बाँधि लैं मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय वढ़ाय कै आस बिसास मैं यौं विष घोरियै जू ।।१०।।

(१०) तेह कै = नाराज होकर । तोरियै = तोड़ते हैं । धार मँझार = बीच धारा में । दई = हे ईश्वर । गहि बाँह = हाथ पकड़ कर । न बोरियै = न डुबोइये । गुन-बाँधि लैं = आपके गुणों में बँधे हुए को । मोह = प्रेम । न छोरियै = न त्यागिये । रस = आनंद या प्रेम रस । ज्याय = जिलाकर । बिसास = विश्वास में । विष घोरियै = क्या विश्वास में इस प्रकार विष घोलना चाहिये (मुहावरा धोखा देना) ।

(ग) कृपाकंद

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसैं,
महिमा फिरि और कहा कहियैं।
दरसैं नित नैंननि बैंननि ह्वै,
मुसकानि सों रंग महा लहियैं।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कों,
रस-प्यावनि ज्वावनि है वहियैं।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ,
हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥१॥

स्याम सुजान हियैं बसियैं रहै,
नैंननि त्यौं लसियैं भरि भाइनि।
बैंननि बीच बिलास करैं, मुसकानि
सखी सो रची चित चाइनि।
है बस जाके सदा घनआनँद,
ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी भई मति मेरी निहारि कैं,
सील-सरूप कृपा ठकुराइनि ॥२॥

---

(१) दरसै…बैननि ह्वै = भगवान् की वह कृपा उनके नेत्रों और वाणी (कथन) में लक्षित होती है। मुस्कानि सों…लहियै = उनकी मुस्कराहट में कृपा महा सौन्दर्य प्राप्त करती है (मुस्कराहट से उनकी कृपा का रंग निखर उठता है)। रस-प्यावनि ज्यावनि = वह कृपा ही भक्तों के प्राण रूपी पपीहों को रस पिला कर (आनंद रूपी स्वाती जल देकर) जीवित रखने वाली है। वहियै = वही कृपा। जीवनि = संजीवनी।

(२) लसियै = वह कृपा शोभित होती है। भरि भाइनि = भाव सहित। मुसकानि सखी = भगवान् की मुस्कराहट रूपी सखी से। रची = अनुरक्त रहती

फीके सवाद परे सबही अब,
ऐसो कछू रसपान कृपा को।
नीरस मानि कहै न लहै गति,
मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को।
रीझनि लैं भिजयौ हियरा,
घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल,
है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ।।३।।

चाहियैं न कछू जाकी चाह तासों फल पायौ,
यातें वाही बन के सरूप नैंन कीनौ घरु।
जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु।
महा घन आनँद फुहार सुखसार सींचे,
हित उतसवनि लगाय रंग-भर्यौ झरु।
प्रेम-रस-मूल फूल मूरति बिराजौ मेरे,
मन-आल बाल कृस्न कृपा को कलपतरु ।।४।।

है। चित-चाइनि = चित की उमंग के साथ, प्रेम पूर्वक। रसाल = रसपूर्ण, सुन्दर। चेरी = दासी। कृपा-ठकुराइनि = कृपा रूपी स्वामिनी।

(३) न लहै गति = मोक्ष को भी प्राप्त नहीं करना चाहता; क्योंकि कृपा सुख के समक्ष यह नीरस प्रतीत होता है। रीझनि लै भिजयौ हियरा = भगवान् के प्रति हमारी रीझ ने कृपा को प्राप्त करके हृदय को प्रेस रस से आर्द्र कर दिया। मोल लियौ = खरीद लिया। बिन मोल = बिना मोल भाव किये ही। अमोल = अमूल्य। पदारथ = रत्न।

(४) चाहियै···पायौ = जिसकी इच्छा करने से ऐसी वस्तुएं मिलीं कि अब किसी वस्तु की चाह नहीं रही। वाही बन = उसी वृन्दावन की सुन्दरता में।

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही,
गुन हीनन तें सब दोष प्रमानैं।
हाहा बुरौ जिन मानियै जू,
बिन जाँचें कहौ किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं,
हैं हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपाकर,
रावरे जी मन के मन मानैं ।।५।।

रही न कसर कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तें बचाय राखैं सुखनि सों सानि हैं।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।
तापु बपुरेनि की सिरानी आय नैक ही मैं,
छाये घनआनँद सुबात-बस आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा लीने पहचानि हैं ।।६।।
साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मत सार गहि ताहि तू।

नैन कीनौ घरु = नेत्रों ने घर कर लिया, वहीं टिके रहते हैं, अन्यत्र नहीं जाते। राधा...कुल = राधा की क्रीड़ा रूपी बोलियों का। छवनि छायौ = मंडप या वितान छाया रहता है। सुदेस थरु = सुंदर स्थान। प्रेम...फूल = प्रेमरस ही जड़ है। मूरति = मूर्ति ही पुष्प है। मन आल बाल = मन रूपी थाला = हित उतसवनि = प्रेमोत्सव। रंग भर्‌यौ = आनंद युक्त। झरु = झड़ी।

(५) ढरौ = द्रवित होते हो। कृपाकर = कृपा के आकर। प्रमानैं = समझते हैं, मानते हैं। मन के मन = मेरे मन के मन आप। मानैं = मान जायँ।

(६) सुखनि सों सानि = आनन्द युक्त करके। एक-एक = एक से बढ़कर एक। रसखानि = आनंदराशि। तापु = ताप। बपुरेनि = बेचारे। सिरानी

प्रेम सो रतन जातें पाइहै सहज ही मैं,
        वह नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख चंद त्यौं चकोर कै सु,
        बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू।
बोहित बिलास ह्व चढ़ाय लैहै सोई हाहा,
        कृस्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू ।।७।।

काहे कौं सोचि मरे जियरा परी,
        तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि,
        तू चातिक ज्यौं, सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै,
        को सठ ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख,
        ताप तें बौरे ! बचाय ही लीहै ।।८।।

●

आय = उम्र समाप्त हो गई। सुबात = सुन्दर बात, हवा। नैक ही मैं = थोड़े ही में।

(७) असाधन के नेग लगौ = असाधन की भेंट हो जाय, असाधन के वश में हो जाय। सभी साधन साधन हीन हो जायँ (अन्य सभी साधनों को छोड़ दें)। साधन···मत सार = साधनों के हेतु। महा मत-सार (भगवान् की कृपा) को। ताहि गहि = उसे ग्रहण करो, प्राप्त करो। त्यौं = ओर। उमाहि = उमंगित हो। बोहित बिलासअ = ानंदरूपी जहाज। मेरे···अवगाहि = हे मेरे मन तू भगवान् के कृपा-सिंधु को थहा ले।

(८) परी···की है = तुम्हें बातों की क्या बिधि पड़ी है; बातों के प्रपंच में तुम क्या पड़े हो। सुख जी है = सुख से जिएगा। रसामृत-पुंजहि = प्रेमामृत राशि (कृपा)। साधन-छीलर = साधनरूपी तलैया। छीहै = छुएगा। बचाय ही लीहै = कृपा बचा लेगी।

(घ) प्रेम-पत्रिका

एक डोलै बेचति गुपालहिं दहेंडी धरें,
नैननि समान्यौ सोई बैननि जनात है।
और उठि बोलै आगें ल्याइ री कहा है मोल,
कैसो धौं जम्यौ है ज्यौ सवादै ललचात है।
आनँद को घन छायौ रहत सदाई ब्रज,
चोपनि पपीहा लौं चहूँधा मँडरात है।
गोकुल-बधूनि की बिकान पै बिकाय रहै,
गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकात है।।१।।

सोंधे सनी अलकैं वगरी मुख,
जोबन जोन्ह सों चंदहि चोरति।
अंगनि रंग - तरंग बढ़ी सु,
किती उपमानि के पानिप ढोरति।
मोहन सो रस-फाग मची सु,
भली भई हौं कब तें ही निहोरति।
आनँद के घन रीझनि भीजि,
भिजै पठई कहा चीर निचोरति।।२।।

---

(१) दहेंडी = दधि पात्र। ज्यौ = मन। चोपनि = चाव, उमंग। गोरस = दधि। चहूँधा = चारों ओर।

(२) सोंधे सनी = सुगन्ध युक्त। अलकैं बगरी = केश फैल गए हैं। जोबन जोन्ह सों = यौवन की दीप्ति से। चंदहि चोरति = चन्द्रमा के प्रकाश को हरण कर रही है (उसकी यौवन द्युति के समक्ष चन्द्रमा की द्युति मंद हो रही है)। किती उपमानि = कितने ही उपमानों की। पानिप = आब, शोभा। ढोरतिं =

बसि नैन हियें दुरि दूरि लसौ,
सुख दैन सदाई सहायक हौ।
कितहूँ दरसौं कितहूँ सरसौं,
गति को समझै पन पायक हौ।
जित झूमि झरौ तित भाग भरौ,
घनआनँद जू रसनायक हौ।
ब्रज मोहन छैल छबीले सुनौ,
कहियै सु कहा सब लायक हौ ।।३।।

गुरनि बतायौ राधा-मोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृन्दाबन गाढ़ें गहि रे।
अद्भुत अभूत मही-मंडल परे तें परे,
जीवन को लाहौ हाहा क्यौं न ताहि लहि रे।
आनँद को घन छायौ रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेस सो पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ।।४।।

नष्ट कर देती है। निहोरति = खुशामद करती थी, विनती करती थी। रीझनि = आनन्द, प्रेम। भीजि = (स्वयं) आर्द्र होकर। भिजै = (तुम्हें भी) आर्द्र करके। आनँदघन = श्रीकृष्ण। रंग-तरंग = प्रेम की तरंग।

(३) हियें दुरि = हृदय में छिपकर। कितहूँ = कहीं। दरसौं = दिखाई देते हो। सरसौं = शोभित होते हो। गति को समझै = हमारी दशा कौन समझे ? पन पायक = प्रण के दास हो, प्रण के वशीभूत (प्रण को पूरा करने वाले)। जित झूमि झरौ = जिधर झूमते हुए बरसते हो। तित भाग भरौ = वहाँ के लोगों को भाग्यशाली बना देते हो। रसनायक = रसिक। सब लायक = सब प्रकार से समर्थ।

(४) सुहायौ = सुन्दर। गाढ़े गहिरे = भली प्रकार से ग्रहण कर ले। अभूत = अपूर्व। परे तें परे = लोकोत्तर। लाहौ = लाभ। लहिरे = प्राप्त कर ले।

गोपनि के आंसुनि सों सींचो अति लोनी लगै,
देखि पाई भाग जागें जीवन की मूरि मैं।
मोहन रसीले को सुरूप दरसावै मन रंजन,
सुअंजन कै राखौं चख पूरि मैं।
याही मिलि रहौं कहा कहौं जैसी जिय आवै,
हेत-खेत गहौं ह्वै निपट चूरि चूरि मैं।
सीसहि चढ़ाऊँ घनआनँद कृपा ते पाऊँ,
प्रेम सार धर्‌यौ है समोय ब्रज धूरि मैं ।।५।।

होत हरे हरे रूखे जो दूखे,
कितै गई सी चिकनानि तिहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी,
सु-कढ़ी छतियाँ छिद बंक बिहारी।
चूक पै मूक भए ही बनै,
घनआनँद हूकनि होत दुखारी।
एतो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै,
एक ही बार चिन्हारि बिसारी ।।६।।

सरस = मनोहर। सुदेश = उपयुक्त स्थान। सो = वह बृन्दावन। पपीहापन = पपीहा के गुणों को। बहि = बहन कर, पालन कर। पुलिन = तट, किनारा। पतित = रे पापी। परि रहि = पड़ा रह (वहाँ से हट मत)।

(५) लोनी = सुन्दर। जीवन की मूरि = संजीवनी बूटी। सुअंजन··· पूरि = उस ब्रज धूलि को आँखों में अंजनि की तरह लगाए रहता हूँ। याही मिलि = इसी से मिलाकर। हेत-खेत = प्रेम क्षेत्र। समोय = मिलाकर।

(६) रूखे = शुष्क। दूखे = संतप्त, दुखित। हरे-हरे = हरा भरा, प्रसन्न। चिकनानि = (प्रेम की) स्निग्धता। मोह-मढ़ी = मोह युक्त। गढ़ी = बनाई। बंक = वक्र, टेढ़ी। हूकनि = कलेजे की पीड़ा। चिन्हारि = पहचान। बिसारी = भुला दी।

चाल-निकाई लखें बिलखैं पचि,
पंगु मरालिनि माल-बिसूरति।
पाय परै न परै मति पाय,
सची तरसै थरसै, न कछू रति।
घूंघट-बीच मरीचन की रुचि,
कोटिक चंदन: को मद चूरति।
लाजनि सों लपटी घनआनँद,
साजन कै हिय मैं हित पूरति ॥७॥

चारिक द्यौस रचे चिकनाय कै,
दीसत नेह - निवाहन - रूखे।
झूमि झमारहि दै घनआनँद,
राखत हाय बिसासनि सूखे।
छैल छबीले भरे छल-छंद,
ढरौ ढब ही अनदोखहू दूखे।
रावरे पेट की बूझि परै नहीं,
रीझ पचाय कै डोलत भूखे ॥८॥

---

(७) चाल-निकाई = गति की सुंदरता। बिलखैं = व्याकुल होती हैं। पचि = हैरान होकर, परेशान होकर। पंगु = लंगड़ा। मरालिनि माल = हंसिनी-समूह। बिसूरति = दुखित होती है, मन में चिन्ता करती है। पाय परै = जब वह अपना पैर रखती है (चलती है)। न परै मति पाय = शची की बुद्धि के पैर नहीं पड़ते (उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है)। सची = इन्द्राणी। थरसै = त्रस्त हो जाती है। न कछू रति = उसकी तुलना में कामदेव की पत्नी रति भी कुछ नहीं है। मरीचन = कांति, किरणें। रुचि = शोभा। चंदन = चन्द्रमाओं। मद-चूरति = मद चूर्ण कर देती है। लपटी = युक्त। हित पूरति = प्रेम का संचार करती है (प्रेम से परिपूर्ण करती है)।

(८) चारिक द्यौस = चार दिन के लिए (थोड़े समय के लिए)। रचे =

मित्र कै पत्रहि पावत ही उर,
काम चरित्र की भीर मची है।
सीस चढ़ावति आँखिन लावति,
चुंबन की अति चोप रची है।
हाय कही न परै हित की गति,
कौन सबाद अचौनि अची है।
छाती सों छ्वावत ही घनआनँद,
भीजि गई दुति-पाँति नची है।।६।।

•

अनुरक्त हुए। चिकनाय कै=अपने प्रेम से स्निग्ध करके। दीसत···रूखे—अब तो प्रेम का निर्वाह करने में तुम बड़े नीरस प्रतीत होते हो। भूमि झमारहि दै=एक बार मस्ती के साथ वृष्टि की झड़ी देकर, हरा बनाकर। राखत···सूखे=विश्वास में अब सूखे किये रहते हो। ढब ही=अपनी गौं से, ढंग से। ढरौ=पिघलते हो। अनदोखहू दूखे=निर्दोष होने पर भी दोषी हो (रूप में निर्दोष हो पर मन से दोषी हो)। रावरे पेट···नहीं=तुम्हारे पेट को बात (तुम्हारा भेद) समझ में नहीं आती। रीझि···भूखे=मेरी रीझि को पचाकर भूखे घूमा करते हो, मेरी रीझि की तुम्हें चिन्ता नहीं है और तुम दूसरे से प्रेम करते हो।

(६) मित्र=नायक। काम चरित्र=काम क्रीड़ा। भीर मची है=भीड़ लग गई है। चोप रची है=उमंग में डूबो है। अचौनि=कटोरा। अची है=पिया है। दुतिपाँति=कांतिराशि। भीजि गई=प्रेमार्द्र हो गई।

(ङ) प्रकीर्णक

आपु ही तें तन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहि गाउँ मैं ।।१।।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ।।२।।

तब तौ दुरि दूरहि तें मुस्क्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माँहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहाँधौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहें धँसे ।।३।।

---

(१) हेरि = देखकर। नेह के चाउ मैं = प्रेम की उमंग में। अमीत = शत्रु। भाउ = भाव।

(२) दृग फेरियै ना = प्रेमभाव समाप्त न कीजिए (पहले जैसी कृपा दृष्टि बनाए रखें)। अनबोलियै = मूक (मुक्ष मूक से)। सर = बाण। ही लगे = हृदय में लगने से। रसनायक = रसिक। रस = आनन्द, प्रेम। बिनती···लीजियै जू = मेरी प्रार्थना को मन में स्वीकार कर लें।

(३) बचाय के और की दीठि = दूसरे की नजर बचा कर, छिपकर, चोरी से। दरसाय = दिखाकर। मनोज = कामदेव। रचाय के = अनुरक्त करके। नैननि मैं सरसे = नेत्रों में शोभित हुए। बिसासी = विश्वासघाती। न जानत हे = नहीं जानते थे। धँसे = प्रवेश किया।

लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोवन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।
गरे गुंज माल उर राजत बिसाल, नख
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर-बीर जमुना के तीर तीर,
टोना भर्‌यौ डोलत ढुटौना नंदराय को ।।४।।

हाथ-चढ़ी हरि कै जवते हरिवोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इते पर हाथ कौं पाय पसारै।
लैहै कहा अव सोंच महा परियै रहै गेहन साँझ सवारै।
मोहन की विसवासिनि बाँसुरी तानन मैं बिष-बाननि मारै ।।५।।

---

(४) पाग = पगड़ी। ललित = सुन्दर। काँधे = कंधे पर। लकुट = लाठी। मैन-सर साँधे = काम के बाणों का संधान किये हुए हैं। चित-छाय = चित्त में घाव। जोबन······रंक = उनके अंगों पर यौवन की झलक को देखकर सुन्दरता रंक (दरिद्र) हो जाती है (उनकी शोभा के सामने सौन्दर्य फीका पड़ जाता है)। छूटी कुटिल अलक = घुंघराले बाल बिखरे हुए हैं। जिय अरुझाय को = मन को उलझाने के लिए, उन्हें फँसाने के लिए। रसाल = सुन्दर। लोनो = सुन्दर हैं। स्याम काय को = श्याम शरीर वाले श्री कृष्ण। बीर = सखी। टोना भर्‌यौ = जादू भरे हुए। ढुटौना = पुत्र। रंग = शोभा। रंक = दरिद्र। तकि = देखकर।

(५) हाथ चढ़ी······बिचारै = जब से वह वंशी श्री कृष्ण के हाथ पर चढ़ी, तब से वह हरण ही किया करती है और ऐसे कामों पर कुछ भी विचार नहीं करती। हाथ कियौ मन सो धन = उसने मन जैसी अमूल्य संपत्ति को हथिया लिया। हेली = सखी। इते······पाय पसारै = इतने पर भी और हथिया लेने के लिए पैर फैला रही है। परियै रहै गेहन = हमारे पीछे पड़ी रहती। सबारै = सुबह। बिसवासिनि = विश्वासघातिनी।

रसिया रँगीलो ब्रजमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग ही को,
ताननि घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनंद को घन चोप चातकी ह्वै भूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तौं हारि परी पै घटै न कहूँ याको तेह ।।६।।

अति तीखे परेखनि-सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनंद प्रान-पपीहा जिवावन आए कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरै जू बियोग की आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक तिहारो-औसेर-दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ।।७।।

आनि मिलौ ढुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद पर्‌यौ तुमकौ चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय बढ़ावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोह न जू तनको कहूँ मोहन ।।८।।

---

(६) आसव = शराब, रस। छक्यौ रहै = नशे में डूबे रहते हैं। अछेह = निरन्तर, लगातार। राग पूरै = राग निकालते हैं। घुमाय = मस्त करके। घूमै = मस्त होते हैं। तेह = क्रोध, तीक्ष्णता।

(७) तीखे = तीक्ष्ण। परेखनि = पछतावा, दुख। नातौ नहीं कटि जायहै = नाता (सम्बन्ध) नहीं टूट सकेगा। ताचि = जलकर। तनौ = शरीर भी। लटि जायहै = क्षीण हो जाएगा, नष्ट हो जायगा। औसेर = प्रतीक्षा की पीड़ा। दरेरनि = रगड़ से।

(८) ढुरि = द्रवित होकर। आपुनि गौं = अपने मतलब से, अपने दाँव से। जारत = जलाते हो। जियराहि = मन को। बिछोहन = वियोग। कौन सवाद

पाय परै गति रावरी कैसें मिलें अमिलौ रहि मोहत मोही।
जोवन हौ जग के घनआनँद या विधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलें ढँग ये घर-माँझ-बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तें ऐसें अमोही ।।९।।

पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है।
तुम दीसि परौ न इतै पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नीके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिन राति असीसति है ।।१०।।

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै खौरनि सों।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनांदस दीसि परै सब ठौरनि सों।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिले कहूँ टौरनि सों।
मन चाहत है मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सों ।।११।।

पर्‌यौ = कौन सा चस्का लग गया है, क्या रस मिलता है ! चित चाहत ही = मन के प्रेम करते ही। दोहन = दुह लेना। चोपनि = उमंग पूर्वक। छोहन = प्रेम, मोह। तनको = थोड़ा भी। मोह न = मोह नहीं है (तुम्हारा मोहन नाम ठीक ही है, क्योंकि तुममें थोड़ा भी मोह नहीं है)।

(९) पाय परै = चरणों पर गिरती हूँ। गति रावरी = आपकी शरण। अमिलौ रहि = वियुक्त होकर, अलग रहकर। मोही = मेरे हृदय को। या विधि = इस प्रकार। मिलें···बटोही = ये घर में पथिक की ही भाँति-मिलें (थोड़े ही समय के लिए दर्शन दे दें)। अमोही = कठोर।

(१०) पल ओट भए = पलकों से दूर हो जाने पर। पन-प्यास भरी = प्राण की पिपासा से युक्त। अकुलानि···पीसति = तुम्हारे वियोग की व्याकुलता हृदय को पीसे डाल रही है। दीस परो न = दिखाई न पड़ो। इतै पर = इस पर भी। आवनि = आना, आगमन। कसीसति है = खींचती है, आकृष्ट करती है। मनसा = कामना।

(११) फीकियै = सामान्य, साधारण। खौरनि = दोषों से। करि प्रीति

काहे कों सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सों कैसें कहौंगी।
जोबन बैर पर्‌यौ है कुटीचर काम पै बाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियै लपटाय पियै अरु हौं पियके हिय लागि रहौंगी।।१२।।

पतंग को = फतिंगे के समान प्रेम करने से। रंग…ठौरनि सों = सभी जगहों से सौन्दर्य (दीपक की भाँति) थोड़े समय के लिए दिखाई पड़ने लगता है। फब्यौ = शोभित हो रहा है (अच्छा लग रहा है)। हिले = मिल गए हैं। टौरनि = अवसर, दाँव।

(१२) सूल = पीड़ा। उदेग = उद्वेग। दहौंगी = जलाऊँगी। बैर पर्‌यौ है (मु०) = पीछे पड़ा है। कुटीचर = छली। काम पै = अवसर आने पर। बाहु अनेक चहौंगी = उन्हें भेंटने के लिए अनेक भुजाओं को चाहूँगी। हिय लागि = हृदय में लगकर (लिपटकर)।

सुजानहित

रूप निधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साथ समाज बिसारे ।।
एक अचंभौ भयौ घनआनंद हैं हित ही पल पाट उघारे।
टारे टरैं नहीं तारे कहूँ सुलगे मनमोहन मोह के तारे ।।१।।
आँख ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी ।
रूप छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी ।।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी ।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ।।२।।
रूप निधान लखें बिन आँखिन दीठि की पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन में, सूल की मूल सलाक भई है ।।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को, मूदें महा अकुलानि मई है।
बूड़त ज्यौ घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ।।३।।
हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
नीर सनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै ।।
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़ मीत के पानि परै को प्रमानै ।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ।४।।

(१) रूप निधान = सौन्दर्य के भण्डार । नेकु निहारे = थोड़ा सा देखा है । अनुराग छकी = प्रेमासक्त । पल पाट = पलक रूपी दरवाजे । उघारे = खोलना । हित ही = प्रेमपूर्वक । तारे = पुतलियाँ, ताले ।

(२) सुजान = चतुर, श्रीकृष्ण । चेरी = दासी । फेरी = वापस कराने पर । बिथकी = मुग्ध हो गई । अनेरी = विचित्र, विलक्षण । नेरी = निकट, पास । पत्याति = विश्वास करती है । कानि बखेरी = मर्यादा त्याग दी । पारि लई = डाल ली है । प्रीति की बेरी = प्रेम रूप जंजीर ।

(३) पीठि दई है = पीठ दे दिया है, साथ छोड़ दिया है । ऊखिल = तिनका । खरकै = खटकता है । सलाक = शलाका, सलाई जिससे अंजन लगाया जाता है । ठौर = स्थान । ठहरानि को = रुकने का । लहै = प्राप्त होता है । ज्यौ = प्राण, जीव । दई बिधि = ब्रह्मा ने दे दिया है । असाधि = असाध्य, न ठीक होने वाला ।

(४) समानै = समान । पानि = पाणि, हाथ । प्रमानै = प्रमाणित करता है । जीव की जीवनि = प्राणों के लिए संजीवनी तुल्य । जान = सुजान, श्रीकृष्ण ।

मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सों कहनो है ।
आँखिन हूँ पहिचान तजी कछू ऐसोई भागनि को लहनो है ।।
आस तिहारियै हौं घनआनँद कैसें उदास भए रहनो है ।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ।।५।।

आस लगाय उदास भए सुकरो जग मैं उपहास कहानी ।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर औरही ठानी ।।
एक सुजान सनेही कहाय दई, कित बोरत हौ बिन पानी ।
यौं उघरे घनआनँद छायकै हाय परी पहिचानि पुरानी ।।६।।

मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिये मोहि अमोही ।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही ।।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोही ।।७।।

पहिले घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार पगी ।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बिसास-दगानि दगी ।।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परीं न कहूँ लगैं कौन घरी सु.लगी ।
अति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी ।।८।।

---

(५) भागनि को लहनो है = जो भाग्य में लिखा है उसी को भोगना है । जान ह्वै = चतुर होकर । इतै पै = इतने पर भी । अजान = अज्ञानी । दहनो है = जल जाना है ।

(६) बिसास = विश्वास । टेक = आधार । गहाय = पकड़ाकर । उघरे = खुलना, हट गये ।

(७) दोही = दुहाई ।

(८) प्यार पगी = प्रेम में डूबी हुई । अब लाय = अब लगाकर । बियोग की लाय = वियोगाग्नि । ठिक ठौर = ठीक स्थान, लक्ष्य । बिसास = विश्वास-घात । दगानि = धोखा । दगी = दग्ध किया ।

मेरोई जीव जौ मारत मोहि तौ प्यारे कहा तुम सों कहनो है ।
आँखिन हूँ पहिचान तजी कछू ऐसोई भागनि को लहनो है ।।
आस तिहारियै हौं घनआनँद कैसें उदास भए रहनो है ।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ।।५।।

आस लगाय उदास भए सुकरी जग मैं उपहास कहानी ।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर औरही ठानी ।।
एक सुजान सनेही कहाय दई, कित बोरत हौ बिन पानी ।
यौं उघरे घनआनँद छायकै हाय परी पहिचानि पुरानी ।।६।।

मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिये मोहि अमोही ।
दीठि कौं और कहूँ नहि ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही ।।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोही ।।७।।

पहिले घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार पगी ।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बिसास-दगानि दगी ।।
अँखियाँ दुखियानि कु बानि परीं न कहूँ लगैं कौन घरी सु.लगी ।
अति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी ।।८।।

---

(५) भागनि को लहनो है = जो भाग्य में लिखा है उसी को भोगना है । जान ह्वै = चतुर होकर । इतै पै = इतने पर भी । अजान = अज्ञानी । दहनो है = जल जाना है ।

(६) बिसास = विश्वास । टेक = आधार । गहाय = पकड़ाकर । उघरे = खुलना, हट गये ।

(७) दोही = दुहाई ।

(८) प्यार पगी = प्रेम में डूबी हुई । अब लाय = अब लगाकर । बियोग की लाय = वियोगाग्नि । ठिक ठौर = ठीक स्थान, लक्ष्य । बिसास = विश्वास-घात । दगानि = धोखा । दगी = दग्ध किया ।

हित भूलि न आवति है सुधि क्योंहूँ सु यौंहूँ हमैं सुधि कीजत है।
चित भूलि तौ भूलत नाहि सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है।।
दृढ़ आस की पासनि कंठ तैं फेरी कै घेरि उसासनि लीजत है।
अब देखियै कौं लौं घिरे घनआनँद आव को दाव सो दीजत है।।९।।

रस मूरति स्याम सुजान लखें जिय जो गति होत सु कासों कहौं।
चित-चुम्बक-लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहि जेतौ गहौं।।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यों घनआनँद देह दहौं।
उर आवत यौं छवि छाँह ज्यौं हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं।।१०।।

मन पारद कूप लौं रूप चहें उमहे सु रहै नहिं जेतो गहौं।
गुन गाडनि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं।।
घनआनँद चेटक धूम मैं प्रान घुटै न छुटै गति कासौं कहौं।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यौं हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं।।११।।

मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं।
जिहि बानक आयो अचानक ही घनआनँद बात सु कासों कहौं।।
अब तौ सपने निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक-आँच दहौं।
उर आवत यौं छबि छाँह ज्यौं हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं।।१२।।

---

(९) ज्यौ = जीव, प्राण। धीजत है = स्थिर होता है, धैर्य प्राप्त करता है। आस की पासनि = आशा के फंदे में। आव = जीवन, पानी (फा० आब)। दाव = अग्नि।

(१०) रस = आनन्द। लौं = भाँति, तरह। च्वै = चू जाना, द्रवित होना। चुहटै = चिपट जाता है। उहटै नहिं = हटता नहीं।

(११) पारद = पारा। कूप = कुप्पी। उमहे = उमंगित होता है। गाडनि = गड्ढा। मनोज = कामदेव। सूल = पीड़ा। चेटक = जादू। घुटै = घुटना। गैल = मार्ग। ओजनि = आवेग, उत्साह।

(१२) हेरि = देखकर। छीवति = छूती हूँ। मयंक = चन्द्रमा। बानक = शोभा। चेटक = जादू। न लहौं = नहीं प्राप्त करती हूँ।

रस सागर नागर स्याम लखें अभिलाषनि-धार मँझार बहौं।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासों कहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं।।१३।।

सजनी रजनी-दिन देखें बिना दुख पागि उदेग की अगि दहौं।
अँसुवा हिय पै घिय-धार परै उठि स्वास जरे सुठि आस गहौं।।
घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवत यौं छवि-छाँह ज्यौं हौं बृज छैल की गैल सदाई रहौं।।१४।।

दुख-धूम की धूंधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिर्‌यौ घुटिहै।
मन भावन मीत सुजान सों नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै।।
धन जीवति, प्रान को ध्यान रहौ, इकसोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै।
घुरि आस की पास उसास-गरें जु परी सु मरेंहू कहा छुटिहै।।१५।।



(१३) रस-सागर = आनन्द के सागर, श्रीकृष्ण। अभिलाषनि-धारमँझार = अभिलाषाओं की धारा के मध्य। पचिहारि कै = परेशान होकर। सिवार = शैवाल, जल की एक धारा। गुन = गुण, डोर या रस्सी।

(१४) दुख पागि = दुख में डूबकर। उदेग = उद्वेग, व्याकुलता। घिय-धारा = घृत धारा। सुठि = सुन्दर।

(१५) दुख-धूमि = दुख रूपी। धूँधरि = धुंधलापन, अँधेरा। घुटिहै = घुट कर मरेगा। तनकौ = थोड़ा भी। धन = धन्या, प्रेमिका। घुरि = कसकर। आस की पास = आशा रूपी फंदा। उसास गरें = विश्वास रूपी गले में।

प्रकीर्णक

कबित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी,
लसति ललित लोल - चख - तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन दमक फैलि हियें मोती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग - रंग ढुरि मुरि जानि मैं ।।१।।

सवैया

झलकै अति सुन्दर आनन गौर छके दृग राजत कानन छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलनि की बरषा उर-ऊपर जातिहै ह्वै ।।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै ।।२।।

कबित्त

छबि को सदन मोद मंडित बदन-चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलों भेष करें भटकीली भाँति सोंही,
मुरली अधर धरे लटकत आयहौ ।।

---

(१) लाजनि लपेटी = लज्जायुक्त। भेदभाय भरी = गूढ़ भावों से युक्त। लोल चख = चंचल नेत्र। छबि को सदन = सौन्दर्यागार। दसन दमक = दाँतों की कांति। लड़कि = लटक के साथ। निधि = भण्डार। अनंग-रंग = काम की दीप्ति। ढुरि = ढुलक जाना। मुरि जानि मै = मुड़ जाने पर।

(२) छके दृग = प्रेम के नशे में डूबे हुए नेत्र। जलजावलि द्वै = दो लड़ों की मोतियों की माला। रूप = सौन्दर्य। धर = पृथ्वी।

(३) मोद-मंडित = आनन्दयुक्त। बदन चंद = चन्द्रमुख। तृषित चखनि = प्यासे नेत्रों को। लटकत = अदा के साथ, मस्ती के साथ।

लोचन ढुराय, कछु मृदु मुसक्यान, नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह जरत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि ! आनँद को घन बरसायहौ ।।३।।
वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै,
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छलताई न छिनक बिसरति है।
आनँद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है ।।४।।
जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि ज़िय की जरनि सो जताइये।
महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं ढुराइये।
दुख को बखान करिबे कों रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ बाको मुख देखन न पाइये।
रैन - दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग,
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइये ।।५।।

ढुराय = मटकाते हुए। लड़काय = ललककर। नेह भीनी = प्रेमयुक्त।

(४) लड़कीली बानि = ललक वाली आदत। अरति है = अड़ जाती है। गति लैन = मुड़कर चलने की क्रिया। बैन = वेणु, वंशी। हँसि दैन = हँस देना। टरति है = हटती नहीं। चिताई = सजगतापूर्वक। चाहिबे की = देखने की।

(५) जासों प्रीति = जिससे प्रेम है। ताहि = उसे। निठुराई सों निपट नेह = निष्ठुरता से अतिशय प्रेम है (वह अतिशय निष्ठुर है)। जताइए = बताएँ। कैसें करि = किस प्रकार, किस ढंग से। दई = हे ईश्वर। बढ़वारि = अधिकता। बेदन = वेदना, पीड़ा। कैं = कई, बहुत। ढुराइये = छिपाऊँ। ऐपै = इतने पर भी।

भये अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुःख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तो निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमें सूल सेलनि सौं क्यौंहू न भुलाय है।
मीठे-मीठे बोलि ठगी पहिले तौ तब,
अब जिय जारत, कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपायहै सु कैसे कलपायहै ।।६।।
नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग भर्‌यौ,
काल्हि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महासोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ ।।
तब ते न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौ कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरे कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी बितै गयो ।।७।।
जाके उर बसी रसमयी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसे करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसे सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै ।।

---

(६) जक = रट। निपट निरदई = अतिशय कठोर। सूल सेलनि = बर्छी चुभने की पीड़ा। काहू = किसी को। कलपायहै = कष्ट दोगे। कल पायहै = चैन पाएगा।

(७) ऐन = घर। मोतन = मेरी ओर। रंचकौ—थोड़ा भी। औचक = अचानक। भटू = सखी, स्त्रियों के लिए आदर वाचक शब्द। लूट सी बितै = लूट सी करके।

(८) रसभरी = रसमयी, आनंदमयी। कैसे करि = किस प्रकार। चखनि चषक = नेत्र रूपी प्याला। रूप-रस = सौन्दर्य का रस (आनन्द)। गरल सनी = जहरीलो। सीखनि = शिक्षा, उपदेश। पागि है = अनुरक्त होगा।

लोचन दुराय, कछु मृदु मुसक्यान, नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह जरत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि ! आनँद को घन बरसायहौ ।।३।।
वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै,
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छलताई न छिनक बिसरति है।
आनँद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है ।।४।।
जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि ज़िय की जरनि सो जताइये।
महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइये।
दुख को बखान करिबे कों रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ बाको मुख देखन न पाइये।
रैन - दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग,
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइये ।।५।।

दुराय = मटकाते हुए। लड़काय = ललककर। नेह भीनी = प्रेमयुक्त।

(४) लड़कीली बानि = ललक वाली आदत। अरति है = अड़ जाती है। गति लैन = मुड़कर चलने की क्रिया। बैन = वेणु, वंशी। हँसि दैन = हँस देना। टरति है = हटती नहीं। चिताई = सजगतापूर्वक। चाहिबे की = देखने की।

(५) जासों प्रीति = जिससे प्रेम है। ताहि = उसे। निठुराई सों निपट नेह = निष्ठुरता से अतिशय प्रेम है (वह अतिशय निष्ठुर है)। जताइए = बताएँ। कैसें करि = किस प्रकार, किस ढंग से। दई = हे ईश्वर। बढ़वारि = अधिकता। बेदन = वेदना, पीड़ा। कैं = कई, बहुत। दुराइये = छिपाऊँ। ऐपै = इतने पर भी।

भये अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुःख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तो निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमें सूल सेलनि सौं क्यौंहू न भुलाय है।
मीठे-मीठे बोलि ठगी पहिले तौ तब,
अब जिय जारत, कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपायहै सु कैसे कलपायहै ।।६।।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग भर्‌यौ,
काल्हि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महासोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।।
तब ते न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौ कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरे कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी बितै गयौ ।।७।।

जाके उर बसी रसमयी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसे करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसें सो गरल-सनी सीखनि सों पागिहै।।

---

(६) जक = रट। निपट निरदई = अतिशय कठोर। सूल सेलनि = बर्छी चुभने की पीड़ा। काहू = किसी को। कलपायहै = कष्ट दोगे। कल पायहै = चैन पाएगा।

(७) ऐन = घर। मोतन = मेरी ओर। रंचकौ—थोड़ा भी। औचक = अचानक। भटू = सखी, स्त्रियों के लिए आदर वाचक शब्द। लूट सी बितै = लूट सी करके।

(८) रसभरी = रसमयी, आनंदमयी। कैसे करि = किस प्रकार। चखनि चषक = नेत्र रूपी प्याला। रूप-रस = सौन्दर्य का रस (आनन्द)। गरल सनी = जहरीली। सीखनि = शिक्षा, उपदेश। पागि है = अनुरक्त होगा।

आनंद को घन स्याम सुन्दर सजल अंग,
छाड़ि, धूम धूँधरि सों कैसे कोउ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरैं सीरे होत,
और बात आलो सब लागत ज्यौं आगि है ॥८॥
हिलग अनोखी क्यौंहूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै ॥
मरति मरुरनि बिसूरनि उदेग बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जो मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥९॥

सवैया

रैन दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अन्तर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी ॥
चौचँद-चार चबाइन के चहुँ ओर मचैं, बिरचैं करि हाँसी।
यों मरयै मरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी॥१०॥

सजल = जलयुक्त, आबदार (कांति युक्त)। धूम-धूंधरि = धुएँ का धुंध। रागिहै—प्रेम करेगा। हेरें = देखने पर। सीरे होत = शीतल होते हैं, आनंदित होते हैं।

(९) हिलग = प्रेम, लगन। पीर-पूरे = पीड़ित। धरक = भय, आशंका, चिन्ता। पाय न पलक एकौ = एक क्षण भी प्राप्त नहीं करते। मरूरनि = पीड़ा। बिसूरनि = पश्चाताप। उदेग = उद्वेग, व्याकुलता। चटपटी = छटपटो, घबराहट। पागियै रहै = डूबी रहती है। बहरैयै = बाहर करना। जी में ठहरैयै = मन में स्थिर होना या ठहरना। दुख-दाह = दुख की ज्वाला में। दागियै = दग्ध रहता है।

(१०) पँसुरीनि = पसुलियों में। गाँसी = फांस। चौचँद-चार = बदनामी की चर्चा। चबाइन के = चुगलखोरों की। चहुँ ओर = चारों तरफ। मचै = फैल जाती है। बिरचैं = रच-रचकर, गढ़-गढ़ करके। भरियैं = दुख के दिन काटना।


साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद